• वर्ष ६५ • अंक १३ • मूल्य ₹२०

जुलाई (प्रथम) २०२३

पाक्षिक

परोपकारी

महर्षि दयानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

योग साधना एवं स्वाध्याय शिविर के दृश्य

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक

योग के रहस्य सीखते शिविरार्थीगण

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६५ अंक : १३

दयानन्दाब्द: १९९

विक्रम संवत् - आषाढ़ शुक्ल २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जुलाई प्रथम, २०२३

अनुक्रम

०१. आर्यसमाज : लक्ष्य-उपलब्धि...	सम्पादकीय	०४
०२. विचार वाटिका-२	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०८
* ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन		११
०३. वेद संज्ञा विचार	आचार्य रवीन्द्र	१२
०४. अग्नि सूक्त-४७	डॉ. धर्मवीर	२०
* परोपकारिणी सभा के आगामी शिविर व कार्यक्रम		२२
०५. अग्निहोत्र-अग्नि पर प्रतिक्रिया	श्री राजेश सेठी	२३
०६. साम-गान का आदि स्रोत और उद्देश्य	श्री जगत् कुमार शास्त्री	२७
* दम्पती शिविर		२९
०७. संस्था समाचार	श्री ज्ञानचन्द	३०
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३२
०८. संस्था की ओर से....		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

आर्यसमाज : लक्ष्य-उपलब्धि-प्रासंगिकता एवं चुनौती-५

गताङ्क जून द्वितीय से आगे

चुनौती- संसार प्रवाह से अनादि है, किन्तु इसमें आरोह-अवरोह, उतार-चढ़ाव, प्रगति-अवनति स्पष्ट दिखाई देती है। कोई भी समुदाय, समाज या संस्था इसका अपवाद नहीं है। जिस प्रकार व्यक्ति के जीवन में उन्नति-अवनति, विस्तार या संकोच दिखाई देता है, उसी प्रकार समाज या संगठन भी कभी विस्तार, कभी ठहराव अथवा संकोच/ह्रास को प्राप्त होते दिखाई देते हैं।

विश्वभर में समय-समय पर अनेक संगठन बनते रहते हैं और लुप्त भी होते रहते हैं। संगठन की महत्ता समकालीन समस्याओं के समाधान में होने से समस्या के दूर होने पर भी संगठन समाप्त हो जाते हैं। प्रासंगिकता होते हुए भी कई बार इस प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित हो जाती हैं कि वह संगठन को विघटित कर देती हैं। आर्यसमाज से पूर्व इसी देश में ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, सत्यशोधक समाज आदि अस्तित्व ग्रहण कर चुके थे, किन्तु आज ये नाममात्र ही अवशिष्ट हैं।

संसार में चाहे व्यक्ति हो अथवा समाज-संगठन उसके सामने चुनौतियाँ न हों, यह सम्भव नहीं। आर्यसमाज अथवा कोई भी अन्य समाज इसका अपवाद नहीं हो सकता। जिस संगठन/समाज के सदस्य सामयिक दृष्टि से विचार करते हुए अदम्य उत्साह से पूर्ण हो समाधान का प्रयत्न करते हैं, वे चुनौतियों को दूर भी कर देते हैं। इससे संगठन चिरजीवी बनता है, किन्तु महत्त्वपूर्ण है चुनौतियों की सही-सही पहचान करना।

आर्यसमाज लगभग सात दशक तक अपनी पूर्ण क्षमता एवं आभा के साथ उद्देश्यों के प्रति समर्पित एवं सक्रिय रहा है। इस कालखण्ड में इसकी उपलब्धियाँ भी कम गौरवपूर्ण नहीं हैं, किन्तु अपने संस्थापक की द्विजन्मशताब्दी तथा स्थापना की सार्धशती (एक सौ पचास वर्ष) के समारोह मनाने की तैयारियों की पूर्व वेला में इसके समक्ष कुछ चुनौतियाँ भी हैं। विचारपूर्वक इन चुनौतियों को दूर किए बिना भविष्य की कल्पना भयावह हो सकती है।

प्रमुख चुनौती हैं-

१. धार्मिक- इसके पक्ष हैं-

क- ईश्वर- क्या ईश्वर किसी के लिए चुनौती हो सकता है? और वह भी जो उसकी सत्ता को स्वीकार करता हो। जी हाँ! निश्चय ही उसकी सत्ता को स्वीकार करने वाले के समक्ष ही यह सम्भव है। जो अविश्वासी है, उसके लिए तो कोई अवसर ही नहीं। ईश्वर के स्वरूप को याथातथ्य रूप में जानकर मानना और उसकी आज्ञा के अनुरूप आचरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

आर्यसमाज का प्राथमिक उद्देश्य था- ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन। उन्नीसवीं शती में हिन्दू धर्म में ईश्वर स्थानी देवत्रयी (ब्रह्मा, विष्णु, महेश-शिव) पूर्णतः प्रतिष्ठित थी। इनमें ब्रह्मा को जगत्स्रष्टा होने के कारण महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उपास्य की दृष्टि से वह प्रतिष्ठा/स्थान प्राप्त नहीं हुआ जो विष्णु एवं महेश-शिव को। सारे देश में केवल पुष्कर राजस्थान में ही ब्रह्मा का एक ही मन्दिर है। जगत् पालन रूप कर्म की महत्ता की दृष्टि से विष्णु के अवतारों की कल्पना की गई। इनमें भी उपास्य की दृष्टि से मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह तथा वामन वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सके जो परवर्ती राम व कृष्ण को प्राप्त हुई। महेश-शिव के किसी अवतार का वर्णन तो नहीं, किन्तु उपास्य की दृष्टि से वह पूर्व में भी महत्त्वपूर्ण था और आज भी है। **बालक मूलशंकर के मन में ईश्वर विषयक जिज्ञासा का अंकुरण इसी शिव की उपासना के समय हुआ था।**

संक्षेप में कह सकते हैं कि पौराणिक हिन्दू समाज में ईश्वर स्थानी दो ही उपास्य मान्य हैं-विष्णु और

शिव। वैष्णव सम्प्रदाय में विष्णु के अवतार हैं राम और कृष्ण। यह पृथक् विषय है कि कहीं-कहीं राम (जो स्वयं विष्णु के अवतार हैं।) को भी शिव के उपासक रूप में वर्णित कर दिया गया है।

आर्यसमाज की स्थापना के अनेक वर्ष पूर्व से ही महर्षि ने इन तीनों को प्रचलित स्वरूप में उपास्य न मानते हुए निराकार ईश्वर की उपासना पर बल दिया। महर्षि ने काशी शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर सन् १८६९ ई.) आदि शास्त्रार्थों तथा प्रवचनों एवं लेखन में सर्वत्र मूर्तिपूजा को अवैदिक कहा है। प्रारम्भिक काल में आर्यसमाज की पहचान ही मूर्तिपूजा न करनेवाले समाज के रूप में थी। यहाँ तक कि किसी चित्र, प्रतिमा, स्टेच्यू पर भी फूल अथवा माला नहीं चढ़ाई जाती थी, किन्तु आज...?

ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ स्वीकार कर उसकी उपासना पर बल दिया गया है। आर्यसमाज का दूसरा नियम- ''ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार...उसी की उपासना करनी योग्य है।'' इसका सुस्पष्ट निदर्शक है। यहाँ सदैव यह ध्यान में रखने योग्य है कि **आर्यसमाज मूर्तिपूजा का विरोधी तो रहा, किन्तु मूर्तिभञ्जक नहीं।** महर्षि अथवा आर्यसमाज से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने मूर्तियों को स्वयं तो नदी में विसर्जित कर दिया, किन्तु किसी आर्य ने कभी भी और कहीं भी किसी मूर्ति को इधर से उधर भी नहीं किया, मूर्ति या मन्दिर तोड़ना तो दूर रहा। यह सब तब हुआ जब विदेशी और विधर्मियों का शासन था। आर्यसमाज ईश्वर के निराकार स्वरूप का प्रतिपादन प्राणपण से करता रहा, किन्तु वर्तमान समय में राजनीतिक पटल पर इतना परिवर्तन हो चुका है कि सत्ता के शीर्ष पर बैठे राजनेता अपने आचरण/व्यवहार से मूर्तिपूजा को इतना प्रश्रय दे रहे हैं कि वह उपासना या कहें उपासना के प्रदर्शन का स्थान ले चुकी है। राजनीति विशेषत: सत्ताधारी दल में कार्यरत (महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त) आर्यसमाजी (समाज के बड़े आयोजन/समारोह के अवसर पर इनका परिचय आर्य नेता के रूप में ही दिया जाता है। अत:) भी इसमें योगदान करते दिखाई देते हैं। सोशल मीडिया पर समय-समय पर अनेक वीडियो प्रसारित होते रहते हैं। इतना ही नहीं, ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रसिद्ध मन्दिर के साथ ही चौराहों पर स्थापित मूर्तियों पर भी ये अभिषेक करते दिखाई दे जाते हैं। यद्यपि उपासना पूर्णत: व्यक्तिगत विषय है, किन्तु जब उपासक स्वयं को किसी विचारधारा के मानने वाला कहते हुए उसके विपरीत आचरण करता है, तब यह उस संगठन की मान्यताओं के समक्ष चुनौती तो है ही।

आज अवतार (राम-कृष्ण आदि) को ईश्वर स्थानी न मानकर महापुरुष के रूप में मानने की बात करना, उसकी सत्ता से असहमति माना जाने लगा है। आज आर्यसमाज के उत्सव पर भी मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद का खण्डन सहज नहीं है। अनेकत्र पदाधिकारी उपदेशक-व्याख्याता को इस विषय में निर्देशित करते देखे जा सकते हैं।

अनेक वर्ष पूर्व अयोध्या में राममन्दिर निर्माण के संकल्प रूप में 'शिलापूजन' कार्यक्रम स्थान-स्थान पर आयोजित किए गए थे। इनमें आर्यसमाज के जिला तथा प्रान्तीय स्तर के पदाधिकारी सोत्साह शिलापूजन करते देखे गए थे। नेतृवर्ग का यह आचरण क्या किसी ऐसे व्यक्ति को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट करेगा जिसने यह पढ़ा और सुना हो कि आर्यसमाज निराकार ईश्वर का उपासक है। कथनी-करनी के इस भेद को देखकर शेष सिद्धान्तों की श्रेष्ठता का विश्वास उसे कौन किस प्रकार दिला सकेगा?

ख- कर्मकाण्ड- सभी मत-पन्थों में कर्मकाण्ड का विधान है। इसका एक पक्ष है- आध्यात्मिक। दूसरा व्यक्तिनिष्ठ-कामनाओं के पूर्त्यर्थ तथा किसी निमित्त से किए जानेवाले धार्मिक कृत्य। काम्य के अन्तर्गत कुछ तो लौकिक कामनाओं से सम्बद्ध हैं और कुछ पारलौकिक। काम्य कर्मकाण्ड में ही अन्धविश्वास का

स्थान है। कर्मकाण्ड को अन्धविश्वास से मुक्त रखना बहुत बड़ी चुनौती है। जैसे-पारलौकिक कर्मकाण्ड के अन्तर्गत मृतक श्राद्ध। आर्यसमाज के प्रचार से पीपल आदि पर घटिका बाँधना, दान की गौ से वैतरणी पार कराने का विश्वास तथा मृतक भोज आदि तो न्यून हुए, किन्तु श्राद्ध का चलन पुनः बढ़ता दिखाई दे रहा है। एक समय था कि मृतक श्राद्ध को लेकर अनेक शास्त्रार्थ हुए। पौराणिक जगत् में एकादशाह, सपिण्डीकरण, मासि/वार्षिक श्राद्ध तथा गया श्राद्ध प्रमुख हैं। **आज एकादशाह/त्रयोदशाह के अवसर पर मृतक का चित्र रखकर श्रद्धाञ्जलि स्वरूप माला या पुष्प अर्पित करना सामान्य हो गया है। वार्षिक श्राद्ध का स्थान आर्यसमाज में पुण्यतिथि नामक आयोजन ने ले लिया है।** साथ ही नदियों/तीर्थों पर ले जाकर अस्थिविसर्जन अब सिद्धान्त विरुद्ध प्रतीत नहीं होता। **हरिद्वार के घाट, पण्डे तथा जनसामान्य साक्षी हैं कि हमारा जितना बड़ा नेता/पदाधिकारी उतनी ही गरिमा से अस्थिकलश विसर्जित किए गए हैं।** पराकाष्ठा तो तब हो गई, जब यह सब गुरुकुल के ब्रह्मचारियों, अध्यापकों, विद्वानों की उपस्थिति में वैदिक मन्त्रोच्चार पूर्वक किया गया। क्या यह चुनौती कोई साधारण चुनौती है?

२. वेद प्रचार- आर्यसमाज का महत्त्वपूर्ण मन्तव्य वेद को सब सत्य विद्या का पुस्तक मानना है। अतः वेद विद्या का प्रसार उसका प्रमुख दायित्व भी है। वैदिक भाषा तो दूर आज संस्कृत भी जनसाधारण की भाषा नहीं है। इस स्थिति में वेद के ज्ञान/सत्यमूलक अनुवाद को विभिन्न भाषा-भाषियों तक सरल एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना बहुत बड़ी चुनौती है। यह बहुकाल एवं बहुद्रव्य साध्य कार्य है, जिसे पूर्ण करने के लिए योग्य व्यक्ति तैयार करना, उनसे कार्य सम्पादित करवाना बहुत ही धैर्य की अपेक्षा रखता है। आज जब महर्षि की द्विजन्मशताब्दी मनाने की तैयारियाँ चल रही हों, क्या तब भी **इस कार्य की क्रियान्विति पर विचार नहीं किया जाना चाहिए?**

३. सांगठनिक- आर्यसमाज का संगठन लोकतान्त्रिक है। अतः इसके पदाधिकारी भी उसी ढंग से चुने जाते हैं अथवा चुने जाने चाहिएं। किन्तु स्थानीय, जिला, प्रान्त एवं सार्वदेशिक स्तर पर संगठन की स्थिति सर्वज्ञात है। **संगठन लोकतान्त्रिक होते हुए भी मूलतः धार्मिक है। किन्तु सत्य सभी को ज्ञात है।** आर्यसमाज का नियम- **'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए'** आज स्मरण रखने की आवश्यकता है। **संगठन के स्तर पर- मेरा विचार ही सत्य, अन्य का नहीं- इसका दुराग्रह संगठन के लिए आत्मघाती है।**

मनुष्य-मनुष्य के मध्य विचारभेद असम्भव नहीं है, किन्तु संगठन के हित में केवल स्वविचार को ही सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए, इस पर अड़े रहना उचित नहीं है। यही स्थिति पद का लेकर भी है। आज पदों को लेकर एक संगठन के दो-दो संगठन होते जा रहे हैं। एकाधिक राज्यों में दो-दो कहीं तीन भी प्रान्तीय सभाएं बन चुकी हैं। प्रत्येक अपने को सही और दूसरे को गलत मान रहा है। विगत दो वर्षों में यूट्यूब पर अनेक वीडियो इस विषय पर प्रसारित किए गए हैं। इनका भाषायी स्तर इन्हें पढ़कर पाठक स्वयं जान लेता है। **यदि किसी सुधी व्यक्ति ने इन्हें पढ़ा है तो क्या वह कभी आर्यसमाज की ओर आएगा?**

उच्च न्यायालयों में चल रहे वाद आज आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में सबसे बड़ी चुनौती हैं। जो धन धर्म प्रचार के लिए है, वह वकीलों तथा न्यायालय द्वारा नियुक्त आर्बिट्रेटर के पास जा रहा है। यदि कोई ऐसी व्यवस्था हो सकती कि न्यायालयों में चल रहे वाद हेतु धन का भुगतान (यह राशि लाखों रुपये में है) सभा कोष से न दिया जा सकेगा, वादी-प्रतिवादी इसे व्यक्तिगत रूप में वहन करेंगे, अथवा **जो वाद को न्यायालय**

लेकर जाएगा, उसे कुछ वर्षों तक किसी पद का दायित्व वहन करने के अयोग्य माना जाएगा, क्योंकि कोई भी वाद किसी सैद्धान्तिक विषय को लेकर नहीं है। इसका प्रमाण है कि किसी सैद्धान्तिक विषय पर अनेक पक्ष होने पर भी विचार के लिए विगत लगभग सात दशक में तो कोई विद्वत्परिषद् किसी सभा द्वारा आयोजित नहीं की गई है।

महर्षि की द्विजन्मशती के आयोजनों के प्रारम्भ होने पर सर्वाधिक चिन्त्य है अथवा यही चिन्त्य होना चाहिए कि-इन चुनौतियों से किस प्रकार निपटा जा सकता है? अपने को महर्षि का अनुयायी कहने वाले ही यदि महर्षि के प्रताप-प्रकाश को ढाँपने के प्रयत्न करते रहेंगे, तब प्रान्तीय तथा केन्द्रीय स्तर पर आयोजित किए जाने वाले आयोजन (४-५दिन के दो-चार मेले) कितने फलदायी होंगे?

बिना विस्तृत विवेचन के साधारण आर्यों की आकांक्षा और अभिलाषा को अतिसीमित शब्दों में व्यक्त करें, तो ईश्वर से इतनी ही प्रार्थना करेंगे कि वह-**मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के अर्थ का प्रकाश नेतृवर्ग के हृदय में आविर्भूत कर दे।**

डॉ. वेदपाल

जागृति गीत

- राकेश

जागृति गीत सुना दो,
प्रलयकाल की निशा थिरकती,
जग की पीड़ा मौन सिसकती,
काँप रही धरणी दु:ख से
उसका भार मिटा दो
जागृति गीत सुना दो।
अवनी, अंबर, जलनिधि तल में,
पाषाणों के अतस्तल में,
हूक उठे, वे मचल पड़ें, औ
कह दें, कष्ट बहा दो-
जागृति गीत सुना दो।
रवि किरणों की छाया लेकर,
अभिनव कल प्रतिभा प्रिय देकर,
संसृति के अणु-अणु में वीरो,
वैदिक नाद बजा दो।
जागृति गीत सुना दो ।

गुरुकुल प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषिउद्यान, अजमेर में संस्कृत भाषा, पाणिनीय व्याकरण, वैदिक दर्शन, उपनिषदादि के अध्ययन हेतु प्रवेश आरम्भ किये गए हैं। इन्हें पढ़कर वैदिक विद्वान्, उपदेशक, प्रचारक बन सकते हैं। कम से कम दसवीं कक्षा उत्तीर्ण १६ वर्ष से बड़े युवकों को प्रवेश मिल सकता है। प्रवेशार्थी को पहले ३ माह का अस्थाई प्रवेश दिया जाएगा। इस काल में अध्ययन व अनुशासन में सन्तोषजनक स्थिति वाले युवकों को ही स्थाई प्रवेश दिया जाएगा। सम्पूर्ण व्यवस्था नि:शुल्क है। गुरुकुल में अध्ययन के काल में किसी भी बाहर की परीक्षा को नहीं दिलवाया जाएगा, न उसकी अनुमति रहेगी। प्रवेश व अधिक जानकारी के लिए-

चलभाष : ७०१४४४७०४० पर सम्पर्क कर सकते हैं। सम्पर्क समय- अपराह्न ३.३० से ४.३०।

विचार वाटिका-२

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

मैं जाँच पड़ताल, खोज करने चल पड़ता- प्यारे पाठकवृन्द सार्वजनिक जीवन में धर्मप्रचार की लगन होने से किसी महत्त्वपूर्ण घटना व जानकारी मिलने पर उस घटना विषयक पूरी व प्रामाणिक जानकारी लेने मैं चल पड़ता। ऐसे कार्यों में धन का व्यय तो होता ही है। किसी समाज अथवा किसी प्रेमी के आर्थिक सहयोग के बिना ऐसे कार्य करता चला गया। कुछ ऐसे प्रसंग समाज हित में देता हूँ।

श्रीमान् ब्रह्मदेव जी महाराज मेरे कृपालु ने एक यात्रा में कर्नाटक में सुनाया कि वह उड़पी में प्रचारार्थ गये, तो एक पुराने आर्यपुरुष को पता चला कि आप कुछ समय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आश्रम में दीनानगर भी पढ़ते रहे। उस आर्यपुरुष ने पूज्य स्वामी जी महाराज विषयक एक संस्मरण सुनाया।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह का निर्णय शोलापुर के जिस आर्य महासम्मेलन में लिया गया, उसमें उड़पी का वह बन्धु भी गया था। उस के समाचार दूर दक्षिण के सब पत्रों में छपने से आर्यसमाज की सर्वत्र धूम मच गई। इस आर्यभाई को लौटने पर उस क्षेत्र के सज्जन आ-आकर सम्मेलन के अपने अनुभव सुनाने को कहते। यह सबको कहता आप बहुत कुछ समाचर पत्रों में पढ़ ही चुके । मैं और एक विशेष स्मरणीय संस्मरण सुनाता हूँ।

वहाँ आर्यसमाज के एक संन्यासी नेता स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के तब दर्शन करके एक-एक व्यक्ति झूम उठता था। **आप जब दूर से आते दिखाई देते थे तो ऐसे लगता था कि मानों पर्वत सरकता आ रहा है। उस प्रतापी अखण्ड ब्रह्मचारी के दर्शन करके हर कोई स्वयं को धन्य मानता था।** श्रीमान् महात्मा ब्रह्मदेव जी से यह प्रसंग सुनकर मैं भी झूम उठा।

मुझे उस यात्रा से अबोहर लौटना ही था। लौटने के कुछ समय पश्चात् मैं सीधा उड़पी कर्नाटक के लिये चल पड़ा। उस सज्जन के घर पहुँच गया। वह नाम से मुझे जानता ही था। स्वाध्यायशील था। उसे विनती की कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी विषयक अपना संस्मरण अब मुझे भी सुनाओ। मैं आपके मुख से ही सुनना चाहता हूँ।

मेरी इस धुन, मेरी इस यात्रा का महत्त्व आप किसी इतिहासकार से पूछिये। पं. लेखराम जी तथा देवेन्द्र बाबू सरीखा गवेषक जाति सेवक मेरी तड़प का मूल्य कर सकता है। आज का संस्थावादी नामधारी आर्यसमाजी इसे मेरा जनून ही मानेगा। वह इसका मूल्याङ्कन क्या करेगा?

श्री पं. ओम्प्रकाश जी वर्मा एक ऐसे मिशनरी थे जो ऐसे संस्मरण सुनाकर श्रोताओं के हृदय में धर्म रक्षा व जाति सेवा के सोये अरमान जगा देते थे। आपने मुझे एक बार बताया कि देश विभाजन से पूर्व एक बार मैं गिदड़बाहा मण्डी (पंजाब) में भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि जी के साथ प्रचारार्थ गया। आपके सुपुत्र प्रकाशचन्द्र बहुत उच्च शिक्षित सरकारी डॉक्टर थे। सारा गिदड़बाहा मेहता जी से प्रभावित था। कई सज्जन आपको अपने गृह पर रख कर सेवा करना चाहते पर वे समझते थे कि आप अपने पुत्र के घर पर ठहरेंगे।

आपने आग्रहपूर्वक कहा, "मैं तो वर्मा जी के साथ आर्यमन्दिर में ही रुकूँगा।" आपकी इस दृढ़ता का वहाँ जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैंने वर्मा जी से तब की कई घटनायें नोट कर लीं और श्री धर्मेन्द्र जिज्ञासु जी को साथ लेकर दिल्ली मेहता के पौत्र के घर सब घटनाओं की जाँच करने मेहता जी की पुत्र वधु (श्री डॉ. प्रकाशचन्द्र की पत्नी) के पास पहुँचा। श्री पं. ओम्प्रकाश जी वर्मा स्मृति दोष से यह घटना देश विभाजन से पहले की बात गये। यह देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् की यात्रा थी।

सब प्रसंग ठीक थे। कई पूरक शिक्षाप्रद प्रसंग आपकी पुत्र वधू से और मिल गये। विश्व परिभ्रमण करने वाले आर्य विचारक महात्मा के जीवन की घटनाओं की खोज में क्या कोई और भी घर से ऐसे निकला?

आर्यसमाजी तनिक विचार तो करें कि पं. लेखराम की अग्नि के उर में लेकर कोई साधन सम्पन्न विद्वान् लेखक आर्यसमाज के इतिहास व सिद्धान्तों की खोज के लिये श्रम करता है। श्री धर्मेन्द्र जी 'जिज्ञासु' और श्री राजवीर जी इस दृष्टि से बहुत बधाई के पात्र हैं।

देश विभाजन के पश्चात् कादियाँ से- देश विभाजन के पश्चात् मैंने कादियाँ में रहते हुये आर्यसमाज सेवा के लिये दिन-रात एक कर दिया। पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय जैसी कई विभूतियाँ कादियाँ खिंच कर आईं। हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में पहला जत्था कादियाँ से लेकर मैं जेल गया। पं. त्रिलोकचन्द्र जी के सब बच्चे (गोद) वाला बच्चा भी अपनी माँ के साथ जेल में गया। कई देवियाँ और भी वहाँ से उस जत्थे में जेल में गई। उनमें मेरी माताजी भी थीं। मेरे ज्येष्ठ भ्राता प्रिंसिपल यश भी तब जेल में थे।

अब श्री वीरेन्द्र जी के पश्चात् जिस व्यक्ति ने सभा का प्रधान पद सम्भाला उसके लम्बे कार्यकाल में सभा का एक भी पत्र मेरे पास नहीं आया। मैं दुर्घटनाग्रस्त होने के पश्चात् यथापूर्व समाज सेवा में सक्रिय हूँ। तेलंगाना हैदराबाद के आर्य तो मेरी सेवाओं का लाभ ले रहे हैं। पंजाब में तो किसी का पत्र व फोन न पाकर क्या यह समझा जावे के यहाँ आर्यसमाज का शान्तिपाठ हो चुका है?

मेरा पता करने वाले, पूछने वाले, काम लेने वाले देशभर में बहुत हैं। मैंने वस्तु स्थिति की कुछ झाँकी दे दी है।

परोपकारी की सम्पादकीय लेखमाला- डॉ. वेदपाल जी ने परोपकारी में एक महत्त्वपूर्ण, विचारणीय, मौलिक लेखमाला आरम्भ की है। लेखमाला पूरी होने पर मैं अपनी प्रतिक्रिया दूँगा। अभी तो मैंने चलभाष पर उन्हें इतनी ही विनती की है कि वे दो चार लेख देकर इसे बन्द न करे दें। इस विषय पर एक ठोस पुस्तक तीन सौ पृष्ठ तक लिखकर प्रकाशित करवा दें।

अभी तो इस लेखमाला की दो ही मणियाँ प्रकाशित हुई हैं। लेखक ने अत्यन्त उपयोगी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ देकर पाठकों पर बहुत उपकार किया है। जानने वाले जान ही जायेंगे कि आप ने भ्रम भञ्जन करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। सनातन धर्म में सुधार के नाम पर प्रचारित किये जा रहे कई प्रकार के अन्धविश्वासों को डॉ. वेदपाल जी उखाड़ फेंक रहे हैं। महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के नाम से कई योगियों, नामधारी इतिहासज्ञों व लेखकों ने जो मनगढ़न्त किस्से प्रचारित करने का प्रयास किया गया अब उनकी जड़ कटकर रहेगी।

यह धुआँधार प्रचार होता रहा कि सुधार की लहर बंगाल से चली थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर के भतीजे की विधवा की लज्जाजनक दु:खद घटना से सारे सुधार आन्दोलन की पोल खोल करके रख दी। श्री ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर ने विधवाओं के दु:खदर्द का देश जाति को ज्ञान करवाया, यह तो अच्छा ही किया, परन्तु बंगाल में फिर कहाँ-कहाँ पर दस-बीस विधवाओं का पुनर्विवाह करवाया गया? ऐसे किसी विवाह में कौन-कौन सा उस काल का बंगाल का कोई महान् नेता सम्मिलित हुआ। मैंने उस युग की कई पत्रिकाओं का एक-एक पृष्ठ उलट-पुलट कर देखा है। ऐसा कोई समाचार छपा नहीं मिला। कथनी करनी का इतना भेद!

आर्यसमाज में एक लम्बे समय से मैं यह लिखता व बोलता चला आ रहा हूँ कि राजेन्द्रलाल मित्र तथा श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर दोनों कलकत्ता की ऋषि दयानन्द विरोधी आर्य संदर्शिनी सभा में सम्मिलित नहीं हुये थे, परन्तु उस सभा की ऋषि के विरुद्ध दी गई व्यवस्था पर दोनों ने हस्ताक्षर किये। सप्रमाण यह सब कुछ लिखता

रहा फिर भी अज्ञात जीवनी पन्थ वालों ने ऋषि की इस जीवनी के लिये ईश्वरचन्द्र को भी एक उत्सुक ऋषि भक्त के रूप में जोड़ने की कुचाल चली है। डॉ. वेदपाल जी की लेखमाला के पूरा होने की प्रतिक्षा में हूँ।

अनजाने में भूल के लिये क्षमाप्रार्थी- मई द्वितीय के अंक में मेरे अंक को पढ़कर तथा क्रान्तिवीर पं. गंगाराम जी का चित्र देखकर हैदराबाद सभा के कार्यालय से कई प्रतिष्ठित आर्यों ने चलभाष करके अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। राज्य के सब आर्यों की भावनाओं को मैं श्री डॉ. वेदपाल जी तथा परोपकारी परिवार तक पहुँचाता हूँ।

लेख में अनजाने में दो सन् में अशुद्ध शीघ्रता से लिखते हुये मात्राओं की अशुद्धि भी मुझसे इस आयु में हो जाती हैं। मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। भूल पर क्षमा माँगने में मुझे कभी संकोच नहीं हुआ। मेरी पुस्तकों में ये तथ्य सब ठीक-ठीक छपे हैं।

शुद्धि आन्दोलन के इतिहास में ऐसी गप्पें- कुछ प्रेमियों ने मुझे विवश किया सात खण्डों में छपे आर्यसमाज के इतिहास पर एक दृष्टि तो डालें। मैंने उन्हें श्री आचार्य उदयवीर जी, स्वामी सर्वानन्द जी, श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी का मत सुना दिया, ''इस इतिहास पर कुछ नहीं कहना।'' यह कहकर एक वाक्य में बहुत कुछ कह गये। अब दबाव पड़ा है तो कुछ तो पढ़ूँगा ही। इस इतिहास के लेखक बड़े व्यक्ति तो होंगे, परन्तु वे न तो मिशनरी थे और न इतिहास के कोई प्रामाणिक ज्ञाता।

धीरे-धीरे उस ग्रन्थ की चमत्कारी भूलें कुछ-कुछ (सब नहीं) सत्यनिष्ठ पाठकों तक पहुँचाऊँगा। पढ़ते-पढ़ते पंजाब के इतिहास में ग्राम मालोमहे (पश्चिमी पंजाब) के शुद्धि आन्दोलन का लम्बा वृत्तान्त पढ़ा। आरम्भ में ही लिखा है कि एक मुसलमान की शुद्धि में वहाँ व्यापक शुद्धि आन्दोलन चल पड़ा। आर्यों का वहाँ आसपास के ग्रामों में दूर-दूर तक प्रचण्ड बहिष्कार किया गया। एक भी आर्य ने तब क्षमा नहीं मांगी। आर्यों ने दलित धर्मबन्धुओं के लिये सब कूप खोल दिये।

पं. चमूपति आदि महापुरुषों ने इस इतिहास पर बहुत कुछ लिखा है। यह मेरे जन्मस्थान के आर्यों का लम्बा इतिहास है सो मैं इस पर कुछ लिखने से बचता ही रहा, परन्तु एक बार जोश में लेख लिख दिया। तब बहुत विद्वानों को यह पता चल गया कि हमारा परिवार इस आन्दोलन की जड़ में था। वहाँ शुद्धि एक मुसलमान की नहीं, एक ईसाई महिला की आर्यों ने शुद्धि करके उसके सिख प्रेमी को ईसाई होने से बचा लिया। सिख तो प्रसन्न हुये ही, बहुत से हिन्दू उस व्यापक शुद्धि आन्दोलन के कारण हृदय से आर्यसमाज के प्रशंसक बन गये।

आर्यों को दबाने सताने के लिये क्या-क्या किया गया? आर्यों में अग्रणी कौन-कौन था? किसी का नाम वहाँ नहीं दिया गया। ये लोग मुझसे पूछ सकते थे। इनको जाँच करने में रुचि ही नहीं थी। सभा से किसी नेता को पुकार कर तब नहीं बुलाया गया। एक बार पूजनीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी लाहौर से आशीर्वाद देने प्रोत्साहित करने अवश्य पधारे। काशी में ऋषि पर ईंट पत्थर फेंकने वाले पं. हीरानन्द जी जैसे प्रकाण्ड विद्वान् उस संघर्ष में साथ थे। मेरे पिताजी ग्राम के पहले आर्यसमाजी थे। पण्डित चमूपति जी ने यथार्थ ही लिखा है कि आर्य अडिग रहे। गांव में अस्पृश्यता को कोई भी नहीं जानता। शुद्धि आन्दोलन में कुछ ग्रामीण आर्यों के नाम दे दिये जाते, पं. हीरानन्द जी और स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का उल्लेख करना ठीक होता। शुद्धि आन्दोलन में एक ग्राम की अग्निपरीक्षा की लम्बी कहानी की झाँकी देने से न जाने ये लेखक क्यों डर गये? इस आन्दोलन का दूसरा उदाहरण सुना नहीं गया।

उत्तर कौन दे?- भारत सरकार की साहित्य अकादमी ने श्री पं. श्रद्धाराम फिलौरी पर एक पुस्तक प्रकाशित की। उसमें पं. श्रद्धाराम के जीवन की कोई प्रेरक, ऐतिहासिक घटना तो लेखक दे न सका। यह डींग अवश्य मारी कि जब ऋषि दयानन्द स्यालकोट गये तो पीछे-पीछे श्रद्धाराम पहुँच गया। आगे-आगे स्वामी दयानन्द

और पीछे-पीछे श्रद्धाराम पीछा करता हुआ पहुँच जाता।

साहित्य अकादमी के कार्यालय से ही श्री रामचन्द्र आर्य ने मुझे इसके उत्तर में पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी। मैंने कहा, ''श्री डॉ. धर्मवीर जी कहेंगे तो अवश्य उत्तर दूँगा।'' धर्मवीर जी ने तत्काल उत्तर देने की प्रेरणा दी।

मैंने उस लेखक का उत्तर तो दिया है। मनगढ़न्त कहानियाँ गढ़ने के लिये उसको अच्छा नंगा किया।

१. ऋषि दयानन्द स्यालकोट तो क्या स्यालकोट जनपद के किसी ग्राम, कस्बा के कभी आसपास भी न आये गये। इस गप्प का प्रयोजन क्या?

२. ऋषि दयानन्द को श्रद्धाराम ने अपने निधन से थोड़ा पहले बहुत श्रद्धा भक्ति से पत्र लिखा। वह तो ऋषि भक्ति के रंग में रंगा गया। हिम्मत है तो अजमेर आकर उसके हाथ का लिखा पत्र पढ़ लो। मेरा पत्र पाकर और पुस्तक छपने पर लेखक ने चूँ तक न की। जिस पौराणिक मत के वह गीत गाता रहा उसके धुरे उड़ाता संसार से गया।

३. सनातन धर्मी वह कभी भी नहीं था। वह तो नास्तिक था। 'सत्यामृत प्रवाह' उसका ग्रन्थ पढ़ लो। ऋषि की कृपा से वेदनिष्ठ ऋषि भक्त बनकर संसार से गया। सरकार भक्त, ईसाई मत के चाकर को मेरे ऋषि ने ऐसे बदला कि ऋषि दर्शन के लिये तड़पता तरसता था।

फिर भी आर्यसमाज को विजय का डंका बजाने से भी संकोच है।

वेदसदन न्यू सूरज नगरी, अबोहर, पंजाब

ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १७, १८ व १९ नवम्बर (शुक्रवार, शनिवार व रविवार) २०२३ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की दुकान लगती हैं। इस वर्ष से स्टॉल किराया २०००=००रूपये प्रति स्टॉल किया गया है। खुले में या अपनी इच्छानुसार स्टॉल लगाना निषिद्ध रहेगा। आप अपना पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य में सहयोग करावें। जिन महानुभावों की पहले राशि जमा होगी उस क्रम से स्टॉल का निर्धारण होगा। ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटर में तीन आधार रहेंगे- १- आर्य धार्मिक पुस्तक, २- हवन सामग्री, ओ३म् ध्वज आदि, ३- दवाईयाँ। आपको जितनी स्टॉल की आश्यकता है उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट या नकद या ऑनलाइन जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- १. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक को राशि की रसीद दिखाकर स्टॉल संख्या प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

सम्पर्क-देवमुनि ७७४२२२९३२७

वेद संज्ञा विचार

आचार्य रवीन्द्र

वेद संज्ञा (नाम) किसका है? यद्यपि इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में स्पष्टता से अपना मत प्रस्तुत किया है, तथापि इस विषय में आर्यसमाज के अन्दर व बाहर अनेक विद्वान् अपना अलग मत प्रस्तुत करते आए हैं। इस कारण से इस विषय में स्पष्टता के लिए मैं इस लेख को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम यह देखें कि यह समस्या व प्रश्न क्यों उत्पन्न हो रहा है? इसको समझने के लिए वैदिक साहित्य के कुछ अंशों का विशेष परिचय अवश्यक है। विशेषकर शाखाओं के विषय में परिचय आवश्यक है। सभी ने सुना होगा कि वेद की शाखाएं होती हैं। महाभाष्य में ऋग्वेद की २१ शाखाओं का, यजुर्वेद की १०१ शाखाओं का, सामवेद की हजार शाखाओं का और अथर्ववेद की ९ शाखाओं का उल्लेख मिलता है। चरण व्यूह ग्रन्थों में यह गिनती थोड़ी सी अलग है। अब हमें यह समझना है कि शाखाएं क्या हैं? वास्तव में सृष्टि के आरम्भ में भगवान् ने ४ ऋषियों को चार वेदों का उपदेश दिया था। उन्होंने आगे उस समय के अन्य मनुष्यों को उन वेदों का उपदेश दिया और यह उपदेश परम्परा से आगे चलता रहा। आगे जाकर कुछ ऋषियों ने वेद संहिता में भी समझने की सुगमता के लिए थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन करके उपदेश देना आरम्भ किया। इसके साथ-साथ अपने शिष्यों की सुविधा की दृष्टि से उनकी व्याख्या की, जिनको हम ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं। उन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों के विभाग हैं आरण्यक और उपनिषद्। इस प्रकार जिस ऋषि ने अपनी ओर से थोड़ा सा परिवर्तन करते हुए संहिता ब्राह्मण आरण्यक एवं उपनिषद् का उपदेश दिया है, वे उस ऋषि के नाम से प्रचलित हुए और एक शाखा बन गयी। इस प्रकार चारों वेदों की अनेक शाखाएं बनती गयीं। इन सभी शाखाओं में क्रम से संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् आते हैं।

सामान्य रूप से संहिता में केवल मन्त्र होते हैं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में उन मंत्रों की यज्ञ परक व्याख्या होती हैं (यजुर्वेद की कुछ शाखाओं को छोड़कर)। उपनिषदों में वेद के सम्बन्ध में अध्यात्मपरक गम्भीर चर्चा व शंका समाधान उपलब्ध होता है। आरण्यक ग्रन्थों में कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म दोनों प्रकार की चर्चा होती है।

अब यहां हमें तीन प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं। एक मत है कि ये सारी संहिताएं, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् वेद हैं। अर्थात् ईश्वर के द्वारा उपदिष्ट हैं। दूसरा पक्ष है- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् इनमें कहीं भी मन्त्र आये हों, वे सब मन्त्र वेद हैं एवं ईश्वर के द्वारा उपदेश किए हुए हैं। स्वामी दयानन्द जी का तथा अन्य प्राचीन ऋषियों का पक्ष अलग रहा है। उनके अनुसार वर्तमान समय में प्रसिद्ध ऋग्वेद की शाकल संहिता, यजुर्वेद की वाजसनेय माध्यंदिन संहिता, सामवेद की कौथुमी संहिता एवं अथर्ववेद की शौनक संहिता वास्तव में वेद हैं अर्थात् ईश्वरीय उपदेश हैं। बाकी सभी ग्रन्थ ऋषियों द्वारा प्रोक्त हैं (अपने से पूर्व आचार्य के द्वारा बताए गए विषयों को जनसाधारण की सुगमता के लिए थोड़े से शब्दों में परिवर्तन करके पुनः प्रस्तुत करना 'प्रोक्त' कहा जाता है)। अब इसमें हम प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों का वेद अर्थात् ईश्वरीय उपदेश ना होना, उनके अन्दर उपलब्ध अनित्य इतिहास से सिद्ध है। संहिता के अन्दर से मन्त्रों के प्रतीक को लेकर उनकी व्याख्या प्रस्तुत करना यह सिद्ध करता है कि वे संहिता के व्याख्यान ग्रन्थ हैं। इनमें अनेक बार अपने पूर्व आचार्य का मत प्रस्तुतिपूर्वक उसका निराकरण एवं स्वमत प्रस्तुति

देखी जाती है। इससे स्पष्ट है कि वे मनुष्यों के द्वारा लिखे गए हैं। संहिताओं में ऐसा हमें देखने को नहीं मिलता। पाणिनि आदि आचार्य ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद से अलग गिनते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। इस विषय में सामान्य रूप से स्वामी दयानन्द के अनुयायियों के मध्य कोई मतभेद नहीं होने से मैं अधिक विस्तार नहीं कर रहा हूँ।

अब संहिताओं का परीक्षण करेंगे। पहले इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या सभी संहिताओं को ईश्वर ने ही उपदेश दिया है? यदि इसका उत्तर हम हाँ मानेंगे तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक समान दिखने वाली इतनी सारी संहिताओं के उपदेश में क्या प्रयोजन है? क्या एक ही वेद की विभिन्न संहिताओं में एक ही विषय का उपदेश है अथवा अलग-अलग विषयों का उपदेश है? यदि एक ही विषय का उपदेश है तो इतनी सारी संहिताओं का उपदेश व्यर्थ है और अलग-अलग विषयों का उपदेश है तो इस पक्ष में निम्न बताई समस्या उपस्थित होगी-

आज हमें कुछ ही संहिताएं उपलब्ध होती हैं, तो क्या हम यह मानें कि ईश्वरोक्त संहिताओं का लोप हो गया? और उनमें उपदेश किये गये ज्ञान को हमने सदा के लिए खो दिया? स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार वेद अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान अभी तक सुरक्षित है अर्थात् एक वेद की सभी संहिताएं उसी विषय का उपदेश करती हैं। अलग-अलग विषयों का उपदेश नहीं करतीं। एक ही विषय को प्रस्तुत करने वाले अनेक ग्रन्थों का उपदेश व्यर्थ होने से वह सिद्ध होता है कि ईश्वर ने १-१ वेद की एक-एक ही संहिता का उपदेश दिया था। अब प्रश्न है कि प्रत्येक वेद की कौन सी संहिता ईश्वरीय मानी जाए?

इसका उत्तर बहुत सरल है।

आचार्याचारात् संज्ञासिद्धिः।महाभाष्य १-१-१

आचार्य अर्थात् स्वामी दयानन्द के आचरण से ही वेद संज्ञा की सिद्धि होती है। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद की व्याख्या स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने की है। जिन संहिताओं की व्याख्या स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने की है वे ही स्वामी जी के मत में वेद हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेद की शाकल संहिता एवं यजुर्वेद की वाजसनेय माध्यन्दिन संहिता की व्याख्या की है। अतः ये संहिताएं ही वेद हैं। रही बात सामवेद व अथर्ववेद की तो स्वामी जी ने सामवेद की कौथुमी शाखा व अथर्ववेद की शौनक शाखा को ईश्वरीय ज्ञान माना है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपने ग्रन्थों में जहाँ कहीं भी सामवेद व अथर्ववेद के मन्त्रों का उद्धरण किया है, इन्हीं संहिताओं से मन्त्रों को लिया है। इसीलिए वेद संज्ञा को लेकर कोई उलझन नहीं है।

आजकल आर्यसमाज में एक और मत प्रचलित होने लगा है। वह मत है- 'संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् इनमें कहीं भी मन्त्र आया हो, वे सब मन्त्र वेद हैं एवं ईश्वर के द्वारा उपदेश किए हुए हैं।' यह बात श्री यशपाल आर्य के लेख 'वेद संज्ञा विचार' में उपलब्ध होती है जिसका लिंक हम साझा कर रहे हैं। लिंक...
https://aryaresearcher.blogspot.com/2023/04/veda-samjna-vicara.html

उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए अनेक प्रमाणों को प्रस्तुत किया है। उनके लेख के नीचे कॉमेंट्स विभाग में मैंने अपनी असहमति तथा शास्त्र चर्चा के लिए आह्वान प्रस्तुत किया था। जिसका मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। अतः इस लेख में उनके पक्ष व उसकी पुष्टि के लिए रखे गए प्रमाणों का परीक्षण कर रहा हूँ। पहले उनके प्रमाणों का क्रमशः परीक्षण करेंगे। विस्तार भय से मैं उनके पक्ष का स्वल्प संकेत मात्र करते हुए विवेचना करूँगा। मेरी इस विवेचना को उनके लेख के साथ पढ़ें तो यह अधिक स्पष्ट होगी।

सर्वप्रथम उन्होंने

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

ऋग्वेद १०.७१.२

इस मन्त्र को प्रस्तुत करके उसकी व्याख्या की है। व्याख्या पूरी तरह से मनगढ़न्त है एवं मूलमन्त्र की भावनाओं से विपरीत है। इस मन्त्र की व्याख्या महर्षि पतंजलि जी ने महाभाष्य में बहुत अच्छी तरह से की है। किन्तु इनकी व्याख्या उससे सर्वथा भिन्न है। मन्त्र के शब्द बहुत सरल हैं। मन्त्र कहता है कि जिस प्रकार हम सत्तू को छलनी से छानकर प्रयोग करते हैं उसी प्रकार हमें अपनी वाणी को मनरूपी छलनी से छानकर प्रयोग करना चाहिए। वेद व मन्त्रों से यहाँ सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है। मान्यवर ने उदाहरण को ठीक से समझा नहीं। सत्तू को छलनी से छानने के बाद छलनी के अन्दर जो कचरा बचता है, उसकी तुलना वेद मन्त्रों से की है। यह तो मन्त्रों की निन्दा है। वे यह भी लिखते हैं कि 'इसी तरह ऋषियों को जो मन्त्र मनुष्य के लिए ज्ञान की दृष्टि से आवश्यक प्रतीत होते हैं, उन्हें ग्रहण कर लेते हैं व अन्य को नहीं करते...' यह उनकी व्याख्या मन्त्र से किसी भी प्रकार से सम्बन्ध नहीं रखती। अस्तु अब आगे बढ़ेंगे।

यहाँ लेखक ने दयानन्द स्वामी जी के पत्र और विज्ञापन के कुछ शब्द प्रस्तुत किए हैं। मुख्य रूप से 'इस विषय में नीचे लिखे वेद मन्त्रों का प्रमाण देख लीजिए' ऐसा कहकर स्वामी जी ने आगे वेद मन्त्रों के साथ साथ तैत्तिरीय आरण्यक के 'सहनाववतु' मन्त्र को भी प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे लेखक यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह भी वेद मन्त्र है। किन्तु हम देखते हैं कि स्वामी जी ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् आदि को वेद के रूप में स्वीकार नहीं करते। फिर भी यहाँ वेद मन्त्र कहकर तैत्तिरीय आरण्यक के 'सहनाववतु' मन्त्र को प्रस्तुत करते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि यहाँ दण्डिन्याय से स्वामी जी अपनी बात कह रहे हैं।

दण्डिन्याय क्या है ये देखेंगे। एक बार एक मार्ग में अनेक लोग हाथ में दण्ड लिए हुए जा रहे थे। उनमें से अधिकांश लोगों के पास हाथ में दण्ड था। उनको देखकर एक व्यक्ति ने दूसरे से पूछा कि ये कौन जा रहे हैं? दूसरे ने कहा 'दण्डिनो गच्छन्ति' अर्थात् दण्डवाले जा रहे हैं। वहाँ सभी के हाथ में दण्ड नहीं था। फिर भी कहा जा रहा है कि दण्डवाले जा रहे हैं, क्योंकि अधिकांश लोगों के हाथ में दण्ड था। इसी प्रकार किसी समूह में अधिकांश एक प्रकार की वस्तु होती हैं तो पूरे समूह को उसी वस्तु के नाम से कहा जाता है। हमें वहाँ उसी प्रकार का तात्पर्य लेना चाहिए। ऋषियों के द्वारा भी इस प्रकार का व्यवहार देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए महर्षि यास्क के निघण्टु को हम देखें। पहले अध्याय की १६वीं कण्डिका में अन्त में 'इत्येकादश ज्वलतिकर्माणः' कहा है, अर्थात् ये ११ क्रियापद हैं। वहाँ ११ शब्द अवश्य हैं किंतु उनमें से अंतिम 'द्युमत्' शब्द क्रियापद नहीं है। पुनरपि आचार्य ने 'इत्येकादश ज्वलतिकर्माणः' कहा है। वह इसलिए है कि इनमें अधिकांश क्रियापद थे। इसी प्रकार दूसरे अध्याय की छठी कंडिका में १८ कांति अर्थ वाले क्रिया पदों की बात कही है। वहाँ १८ शब्द अवश्य हैं, किंतु सभी क्रियापद नहीं हैं, उनमें से चकमानः आदि क्रियापद नहीं हैं। यही स्थिति १९वीं कंडिका में तथा तीसरे अध्याय की ११वीं कंडिका में भी देखने को मिलती है। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी का भी तात्पर्य यही था कि यहां रखे गए प्रमाणों में अधिकांश वेद मंत्र है। स्वामी दयानन्द जी ने प्रमाण प्रस्तुत करने के बाद भी यह लिखा है कि '... वेद द्वारा...'। लेखक की दृष्टि से इस प्रकार दोबारा वेद द्वारा कहकर स्वामी जी ने यह स्वीकार किया कि सहनाववतु वेद मन्त्र है। यहाँ भी हमें दण्डिन्याय ही समझना चाहिए। आगे आर्याभिविनय का प्रमाण दिया गया है। वहाँ भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

अब आगे देखते हैं। स्वामी दयानन्द जी ईशावास्य उपनिषद् को वेद मानते हैं और ईशावास्य उपनिषद् वास्तव में यजुर्वेद की काण्व संहिता का ४०वां अध्याय है। यह

सत्य है कि वर्तमान में परम्परा से काण्व संहिता के ४०वें अध्याय को ईशावास्योपनिषद् मानते हैं।

हम परम्परा पर थोड़ा सा ध्यान देवें। वास्तव में यजुर्वेद (ईश्वरोक्त) का ४०वाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् के रूप में माना जाता था। किन्तु दक्षिण भारतीय शंकराचार्य जी ने काण्व संहिता के ४०वें अध्याय पर अपना भाष्य किया था। वह इसलिए था कि दक्षिण भारत में शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता ही प्रचलित है। आचार्य सायण ने भी शुक्ल यजुर्वेद के भाष्य के नाम से काण्व संहिता का ही भाष्य किया है। इसीलिए परम्परा में ईशावास्योपनिषद् के नाम से काण्व संहिता का ४०वाँ अध्याय ही प्रसिद्ध हो गया। किन्तु स्वामी दयानन्द के वचन से प्रतीत होता है कि यजुर्वेद (वाजसनेय माध्यन्दिन संहिता) का ४०वाँ अध्याय ही ईशावास्योपनिषद् है।

स्वामी जी यदि काण्व संहिता को भी यजुर्वेद मानते तो यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता की व्याख्या पूरा करके '....यजुर्वेदभाष्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः। समाप्तश्चायं ग्रन्थ इति।' ऐसा क्यों लिखते? अर्थात् वे यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता के ४०वें अध्याय की व्याख्या पूर्ण करके यजुर्वेद को समाप्त मानते हैं अर्थात् इससे आगे कोई यजुर्वेद नहीं है, ऐसा मानते हैं। अन्यथा वे ग्रन्थ को समाप्त नहीं मानते। उन्होंने कभी भी काण्व संहिता की व्याख्या करने अथवा पठन-पाठन व्यवस्था में जोड़ने का प्रयास नहीं किया। इसी से स्पष्ट है कि वे काण्व संहिता को वेद नहीं मानते।

श्री यशपाल आर्य इससे आगे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेद संज्ञा विचार प्रकरण की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि- '...मन्त्र संहिताओं का नाम वेद है अर्थात् जो मन्त्र हैं वे वेद हैं...।' यह समझ में नहीं आ रहा कि वे किस को धोखा देना चाहते हैं? जब ऋषि मन्त्र संहिताओं का नाम वेद कह रहे हैं तो आप केवल मन्त्र को वेद कैसे कह सकते हैं? क्या संहिता शब्द वहाँ व्यर्थ है? इस प्रकार ऋषि के वाक्य में से अपने मतलब के शब्द लेकर पक्ष सिद्ध करने का प्रयास करेंगे तो हो सकता है ज्यादा ध्यान ना देने वाले कुछ भोले लोग उसको स्वीकार कर लें किन्तु विद्वानों के समक्ष इस प्रकार का प्रयत्न व्यर्थ होगा। इस पर और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

श्री यशपाल आर्य द्वारा इससे आगे भी इसी प्रकार का अनर्थ करने का प्रयास हुआ है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इसी प्रकरण में ऋषि का निम्नलिखित वाक्य है-

'...इषे त्वोर्जे त्वेति इत्यादीनि मन्त्रप्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदानां व्याख्यानकरणात्।'

बहुत सरल संस्कृत भाषा है। स्वामी जी लिखते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में 'इषे त्वा' इत्यादि मन्त्र के प्रतीक को लेकर वेद की व्याख्या की जाती है। किन्तु लेखकवर ने इसका भी अनर्थ कर दिया। वे इस सरल वाक्य का अनुवाद इस प्रकार करते हैं...यहाँ ऋषि के अनुसार जिनकी प्रतीक धर के व्याख्या की जाए वे वेद और जिनमें प्रतीक धर के व्याख्यान किया जाए वे वेद नहीं प्रत्युत् उनके व्याख्यान हैं...' इस प्रकार लेखक श्री यशपाल आर्य ऋषि के वाक्य का अनर्थ करते हुए अपना पक्ष सिद्ध करना चाहते हैं।

आगे श्री यशपाल आर्य ने अपने लेख में वेद मंत्रों के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति की लम्बी चर्चा की है और उसकी पुष्टि में अनेक प्रमाण भी देने का प्रयास किया। इस पर आगे अलग ही एक लेख लिखा जाएगा। किन्तु इस प्रकरण के अन्त में निष्कर्ष के रूप में वे लिखते हैं- '...इस सृष्टि में जिस पदार्थ के निर्माण में व समृद्धि होने में जिन मन्त्रों का योगदान होता है उन-उन मन्त्रों को उस पदार्थ के यज्ञरूपी मानचित्र में यथास्थान पढ़ा जाता है। अर्थात् जो यज्ञ में मन्त्र पढ़ने का ऋषियों ने विधान किया है वे मन्त्र इस ब्रह्माण्ड में पूर्व से ही विद्यमान हैं। इस हेतु से भी शाखाओं में आए अतिरिक्त मन्त्र जिनका ब्राह्मण आदि में विनियोग है ईश्वरीय सिद्ध होते हैं।' यह हेतु श्री

यशपाल आर्य के अपने मनगढ़न्त सिद्धान्त पर आश्रित होने से मान्य नहीं हो सकता। आगे वे शतपथ ब्राह्मण के निम्न वाक्य प्रस्तुत करते हैं-

'तदु हैकेऽन्वाहुः। होता यो विश्ववेदसऽइति... तदु तथा न ब्रूयात् मानुषं ह ते यज्ञे कुर्वन्ति...।'

अर्थात् किसी आचार्य का मत है कि 'होतारं विश्ववेदसं' की जगह 'होता यो विश्ववेदस' ऐसा पढ़ें। यह इसलिए है कि स्वयं को 'अरं' ना कहना पड़े (उनके मत में स्वयं को 'अरं' कहना अशुभसूचक है)। महर्षि याज्ञवल्क्य इसका निराकरण करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार मन्त्र में परिवर्तन करके बोलना अनुचित है, क्योंकि वह मन्त्र मानुष हो जाता है और यज्ञ में जो भी मानुष है वहाँ हानि करने वाला होता है। यहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य ने मानुष मन्त्रों की बात कही है। ये मानुष मन्त्र चार मूल संहिताओं को छोड़कर अन्य सहिताओं में हो सकते हैं। इससे तो हमारा पक्ष ही सिद्ध होता है कि चार मूल संहिताओं के मन्त्र ही ईश्वरकृत हैं, अन्य संहिताओं के मानुष मन्त्र ईश्वरकृत नहीं हैं।

श्री यशपाल आर्य द्वारा अपने लेख में आगे की चर्चा में तीन प्रमाण सामने रखे गए हैं। एक गोपथ ब्राह्मण का एक महाभाष्य का और एक स्वामी दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का। उनका समाधान इस प्रकार है-

गोपथ ब्राह्मण में यह जो कहा गया है कि अथर्ववेद का अध्ययन 'शन्नो देवी' मन्त्र से आरम्भ होता है इससे स्पष्ट है कि गोपथ ब्राह्मण पैप्पलाद शाखा का है। इसी कारण से अपनी शाखा सम्बन्धित संहिता के अध्ययन सम्बन्धी बात गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में कही गयी है। इससे हम कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। महाभाष्य में चार मन्त्र प्रस्तुत किए गए हैं। महाभाष्यकार ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की थी कि ये सब मन्त्र चारों संहिताओं के आरम्भिक मन्त्र हैं। यह तो हमारी ही कल्पना है कि चारों मन्त्र चारों संहिताओं के आरम्भिक मन्त्र हैं। अतः दोष हमारी कल्पना में है। स्वामी दयानन्द ने जो यह कहा है कि चारों मन्त्र वेदों के आरम्भिक मन्त्र हैं, तो इसको भी हमें दण्डिन्याय के अनुसार समझना चाहिए। (दण्डिन्याय के विषय में हम पहले ही बता चुके हैं)। यहाँ अधिकांश मन्त्र अर्थात् तीन मन्त्र तीन वेदों के आरंभिक मन्त्र हैं। क्योंकि स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में यह स्पष्ट रूप से कहा है कि अथर्ववेद का आरम्भ 'ये त्रिषप्ताः' से होता है, अतः यहाँ 'शन्नो देवी' मन्त्र अथर्ववेद का आरम्भिक मन्त्र नहीं हो सकता।

'तेन प्रोक्तम्' सूत्र के महाभाष्य के वाक्यों का जो श्री यशपाल आर्य ने अर्थ किया है वास्तव में वे वाक्य पूर्वपक्ष के हैं। यह अत्यन्त हास्यास्पद है कि वे पूर्वपक्ष के वाक्य को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करके अपना पक्ष सिद्ध करना चाहते हैं। उससे आगे सिद्धान्ती कहता है कि वेद में कहा गया अर्थ नित्य है किन्तु वहाँ वर्णानुपूर्वी तो अनित्य है। अर्थात् ये सब शाखाएं ऋषियों के द्वारा बनाई गई हैं। वेद के अर्थ के अनुसार ही बनाई गई हैं, किन्तु शब्दावली ऋषियों की होने से अनित्य हैं।

आगे श्री यशपाल आर्य का कथन है कि ऋषि केवल वेद मंत्रों का ही दर्शन करते हैं, किन्तु ऐसा कोई नियम नहीं है, वे अन्य शास्त्रों का भी दर्शन करते हैं। विद्या के जो चार विभाग हैं उसमें अन्तिम विभाग साक्षात्कार है अर्थात् दर्शन है और सभी शास्त्र विद्या के अंदर आते हैं केवल वेद नहीं, अतः श्री यशपाल आर्य की यह प्रस्तुति भी उनके पक्ष की सिद्धि में किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं है।

आगे श्री यशपाल आर्य ने स्वामी दयानन्द जी का मत प्रस्तुत करते हुए बताया कि वेद, मन्त्र, निगम, श्रुति ये सब पर्याय शब्द हैं। सत्य है कि स्वामी जी ने इन सबको पर्यायवाची माना है। किन्तु इन शब्दों के और कोई अर्थ नहीं हो सकते, ऐसा स्वामी जी ने नहीं कहा। वस्तुतः ये शब्द अन्य अर्थों में भी देखे जाते हैं। जैसे कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनुस्मृति आदि राजनीति से सम्बन्ध

रखने वाले शास्त्रों में मन्त्र शब्द 'गुप्त योजना' के लिए प्रयोग किया जाता है। श्रुति शब्द का 'श्रवण' मात्र अर्थ में बहुधा प्रयोग होता है। वाचस्पत्यम् कोष में निगम शब्द के १० अर्थ दिए हुए हैं। निरुक्तकार निगम शब्द का प्रयोग वेद के अर्थ में भी करते हैं तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के अर्थ में भी करते हैं। इसलिए शब्दों को इस प्रकार बांधकर अपना पक्ष सिद्ध नहीं करना चाहिए।

चार मूल संहिताओं के अतिरिक्त अन्य संहिताओं में आए वाक्यों के लिए ऋषियों ने मन्त्र निगम आदि शब्दों का प्रयोग किया है, क्योंकि वे वाक्य भी मन्त्र की तरह ही होते हैं, मन्त्रों में थोड़े से परिवर्तन करके बनाए गए होते हैं। ऋषियों के इस गौण कथन मात्र से वे वाक्य ईश्वरीय मन्त्र नहीं हो सकते हैं।

जिस प्रकार पत्नी शब्द यज्ञ के संयोग में ही प्रयोग करने का विधान है, किन्तु लोक में 'वृषलस्य पत्नी' अर्थात् किसी दुष्ट व्यक्ति की पत्नी, ऐसा प्रयोग देखा जाता है, अर्थात् ऐसे व्यक्ति की पत्नी जिसका यज्ञ से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा प्रयोग देखा जाता है, तो हमें गौण प्रयोग को भी स्वीकार करना चाहिए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी शाखा को ऋषि-प्रोक्त मानते हैं यह बात श्री यशपाल आर्य ने स्वीकार की है। और इस पक्ष में तीन दोष रखते हुए श्री यशपाल आर्य स्वामी दयानन्द जी के मत का खण्डन करने का प्रयास करते हैं। उनकी चर्चा करना चाहूंगा-

श्री यशपाल आर्य का बताया प्रथम दोष- एक ओर स्वामी जी ने सभी शाखाओं को ऋषि-प्रोक्त माना है और दूसरी ओर परम्परा से इन शाखाओं से अतिरिक्त और कोई संहिता हमें उपलब्ध नहीं होती। अर्थात् कोई ईश्वरीय वाणी हमें परम्परा से उपलब्ध नहीं होती। यह प्रथम वाक्य बिलकुल सत्य है। किन्तु स्वामी जी ने आज भी ईश्वरीय वाणी उपलब्ध मानी है और शाकल आदि ४ संहिताओं को ईश्वरीय स्वीकार किया है। महाभाष्यकर ने भी 'तेन प्रोक्तम्' सूत्र में सभी शाखाओं में वर्णानुपूर्वी को अनित्य स्वीकार करते हुए भी 'मतौ छः सूक्तसाम्नोः' सूत्र में आम्नाय में वर्णानुपूर्वी आदि को नित्य माना है।

आम्नायशब्दानामान्यभाव्यं
स्वरवर्णानुपूर्वीदेशकालनियतत्वात्।

(महाभाष्य ५-२-५९)

तात्पर्य है कि लौकिक शब्दों से आम्नाय शब्द भिन्न हैं। उस में दो हेतु बताये हैं। पहला स्वर और वर्ण की आनुपूर्वी के नित्य होने से, दूसरा आम्नाय में वर्णित देश और काल के नित्य होने से। अर्थात् महाभाष्यकार ऋषिप्रोक्त शाखाओं को अनित्य मानते हुए भी उनसे पृथक् वेद को स्वीकार करते हैं। इसीलिए स्वामी दयानन्द जी का पक्ष महाभाष्यकार के पक्ष के अनुकूल होने से पूर्णरूप से प्रामाणिक एवं सही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वामी जी के मत में शाकल आदि ऋषियों ने मूल ईश्वरोक्त वेद को बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के आगे बढ़ाया है। इसलिए यह कोई दोष नहीं है। अब यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि स्वामी दयानन्द जी को कैसे ज्ञात हुआ कि शाकल आदि संहिताएं ही मूल वेद हैं?

इसका उत्तर देना वास्तव में बहुत कठिन है। ऋषि लोग अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं और हमारी दृष्टि उनकी अपेक्षा से स्थूल होती है। स्वामी दयानन्द जी ने इस विषय में कोई भी प्रमाण अथवा हेतु प्रस्तुत नहीं किया है। अतः इस निर्णय के विषय में उनका आधार हमें अज्ञात ही है। किन्तु यजुर्वेद के विषय में कुछ प्रमाण आपके सामने अवश्य रखना चाहूंगा। सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण के ऊपर प्रस्तुत प्रकरण को मैं पुनः स्मरण दिलाना चाहूंगा। वहाँ मानुष मन्त्रों का निषेध किया है। अर्थात् माध्यन्दिन संहिता पूर्णरूप से ईश्वरीय यजुर्वेद है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

इससे अतिरिक्त माध्यन्दिन संहिता के ९वें अध्याय के ४०वें मन्त्र का एक अंश प्रस्तुत कर रहा हूं जोकि राज्याभिषेक के विषय में विनियुक्त है।

...एष वोमी राजा... (यजुर्वेद ९-४०)

यहाँ राजा के लिए केवल सर्वनाम शब्द का प्रयोग है, इससे इस मन्त्र को हम किसी भी देश के राजा के लिए प्रयोग कर सकते हैं, किंतु यजुर्वेद की अन्य संहिताएं जो आज उपलब्ध हैं, उनमें देश आदि का भी वर्णन मन्त्र में मिलता है जो नीचे प्रस्तुत है।

एष वः कुरवो राजौष पञ्चाला राजा
(काण्व संहिता ११-२१)
एष वो भरता राजा (तैत्तरीय संहिता १-८-१०)
एष वो जनते राजा (मैत्रायणी संहिता २-६-९)
एयं वो जनते राजा (काठक संहिता १५-६)

अर्थात् ये मन्त्र उन-उन देशों में ही प्रयोग किए जा सकते हैं। यह इसलिए था कि जिन शाखाओं में वे मन्त्र हैं वे शाखाएं संभवतः उन उन जनपदों में अधिक प्रचलित थीं। अनित्य देश के नाम का संयोग होने से ये सब शाखाएं ईश्वरोक्त नहीं हो सकती हैं। केवल माध्यन्दिन शाखा ही ईश्वरोक्त हो सकती है। इसी प्रकार अन्य वेदों के विषय में भी कुछ कारण होंगे जिनके आधार पर स्वामी दयानन्द जी ने इन चार संहिताओं को ही ईश्वरोक्त वेद के रूप में स्वीकार किया था।

इसके अतिरिक्त मैं यह भी याद दिलाना चाहूंगा कि महाभाष्यकार तेन प्रोक्तम् सूत्र में ऋषि-प्रोक्त सभी संहिताओं को अनित्य मानते हैं। किंतु मीमांसाकार ऋषि-प्रोक्त संहिताओं को नित्य मानते हैं। यहां संगति इसी प्रकार हो सकती है कि कुछ ऋषि-प्रोक्त संहिताएं अनित्य हैं और कुछ नित्य हैं। इससे भी स्वामी दयानन्द जी का पक्ष सिद्ध होता है और कोई दोष नहीं होता।

श्री यशपाल आर्य के दूसरे दोष के विषय में मैं पहले ही बता चुका हूँ कि वेद के मूल अर्थ को ना बदलते हुए ऋषियों ने संहिताओं को बनाया है। इसीलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती उनको ईश्वरोक्त नहीं मानते हैं। अर्थात् वे मानते हैं कि शब्दावली ऋषियों ने बनायी है। इसमें यह भी हो सकता है कि मन्त्रों में कुछ परिवर्तन करते हुए बनायी हो अथवा नए मन्त्र भी बनाये हों किन्तु ईश्वरोक्त वेद में वर्णित विषय से अलग और कोई विषय उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया, इसलिए यह भी कोई दोष नहीं है। श्री यशपाल आर्य के तीसरे दोष का भी मैंने ऊपर अपनी प्रस्तुति में समाधान कर दिया है, अतः यह भी दोष नहीं रहा।

शाखाओं की संख्या को लेकर उलझने की कोई आवश्यकता नहीं है। हर समय प्रत्येक वेद की अलग-अलग संख्या में शाखाओं का होना सम्भव है, क्योंकि नए ऋषियों के द्वारा व्याख्यान करना और पुराने ऋषियों की व्याख्याओं का लुप्त होना इतिहास के क्रम में सम्भव है। अतः समय-समय पर शाखाओं की संख्या अलग-अलग होना भी सम्भव है।

आगे श्री यशपाल आर्य ने 'आख्या प्रवचनात्' मीमांसा सूत्र की व्याख्या करते हुए प्रवचन शब्द का 'अध्यापन' अर्थ किया है। यह बात शाकल आदि चार संहिताओं के विषय में बिलकुल ठीक है। किन्तु 'तेन प्रोक्तम्' सूत्र से जब हम प्रत्यय लाते हैं तो यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रवक्ता केवल अध्यापन ही करता हो। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी आचार्य पाणिनि के द्वारा प्रोक्त है। तो आचार्य पाणिनि जी ने अष्टाध्यायी का अध्यापन मात्र नहीं किया, उसको बनाया भी है, किन्तु आपिशलि आदि पूर्व आचार्यों की परम्परा के अनुसार। प्रोक्त शब्द का अर्थ हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं।

हम भी यह नहीं मानते हैं कि किसी मन्त्र में पाठभेद होने मात्र से वह शाखा हो जाता है अथवा मानुष हो जाता है। विभिन्न शाखाओं के मानुष होने के पक्ष में हमने पर्याप्त प्रमाण पूर्व ही रख दिए हैं।

कभी यह संशय न रह जाए कि एक वेद की विभिन्न शाखाओं में विषय एक हो अथवा अलग-अलग? इस विषय में मीमांसा शास्त्र का एक प्रकरण प्रस्तुत करना चाहूंगा। महर्षि जैमिनी जी विभिन्न शाखाओं में वर्णित कर्म अलग- अलग हैं, ऐसा पूर्वपक्ष निम्न सूत्र से स्थापित करते हैं-

नामरूपधर्मविशेषपुनरुक्तिनिन्दाऽशक्तिसमाप्तिवचन-प्रायश्चित्तान्यार्थदर्शनाच्छाखान्तरेषु कर्मभेदः स्यात्।।

मीमांसा २-४-८

इस प्रकार नाम रूप आदि भेद होने से विभिन्न शाखाओं में वर्णित कर्म अलग-अलग हैं ऐसा पूर्वपक्ष प्रस्तुत करके निम्न सूत्र सहित २४ सूत्रों के द्वारा उत्तर देते हैं कि विभिन्न शाखाओं में वर्णित कर्म अलग-अलग नहीं हैं।

एकं वा संयोगरूपचोदनाऽभिधानत्वात्।।

मीमांसा २-४-९

कर्म के विधान के मूल प्रयोजन एक होने से किसी भी शाखा के अनुसार अग्निहोत्र आदि कर्म करने से फल समान रूप से ही मिलेगा, अलग नहीं।

इससे स्पष्ट है कि एक वेद की विभिन्न शाखाओं में अलग-अलग विषय नहीं हैं। किंतु वे ही विषय अलग-अलग तरीके से बताए गए हैं। अर्थात् किसी एक शाखा को यदि हम ठीक से अध्ययन करेंगे, तो वही ज्ञान प्राप्त करेंगे, जो अन्य शाखाओं में बताया गया है। इस स्थिति में एक विषय के अनेक ग्रंथों का उपदेश ईश्वर ने किया है, ऐसा कहने पर ईश्वर पर पुनरुक्ति दोष आएगा। जब एक संहिता के द्वारा ईश्वर ने एक विषय को हमें उपदेश किया है, तो उसी विषय को उपदेश करने के लिए और अनेक अन्य संहिताओं को बनाना निष्प्रयोजन होगा। इसीलिए हमें यही मानना उचित होगा कि ईश्वर ने प्रत्येक एक वेद की १-१ संहिता का ही उपदेश दिया है।

जो यह कथन है कि ब्राह्मण ग्रन्थ आदि के अन्दर आए हुए मन्त्र भी ईश्वरोक्त हैं, तो प्रश्न है कि क्या किसी ऋषि के ग्रन्थ के मध्य में ईश्वर ने आकर मन्त्रों का उपदेश किया? यह कहना अत्यन्त असंगत प्रतीत होता है कि ऋषि लोग ब्राह्मण ग्रन्थ बना रहे थे और उनके ग्रन्थ के मध्य में ईश्वर आकर कुछ मन्त्रों का उपदेश कर रहा था। कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति इस प्रकार की बात को स्वीकार नहीं कर सकता और ना ही इस पक्ष में कोई प्रमाण है। अतः इस प्रकार की मनगढंत बातों का प्रचार नहीं होना चाहिए। जो सत्य है उसी को हमें स्वीकार करना चाहिए। **- वैदिक ग्राम, हमीरपुर।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा। **सूचना हेतु सम्पर्क-**

ऋषि उद्यान कार्यालय - ०१४५-२९४८६९८ परोपकारिणी सभा कार्यालय - ०१४५-२४६०१६४
व्हाट्सएप - ८८९०३१६९६१ सम्पर्क का समय - ११ से ४ बजे तक
(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) निवेदक - मन्त्री

अग्नि सूक्त-४७

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।
-सम्पादक

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।।

वेदज्ञान की चर्चा के इस प्रसंग में हम ऋग्वेद के पहले मण्डल के पहले सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। यह सूक्त अग्निसूक्त कहलाता है। इसका ऋषि मधुच्छन्दा है, इसका देवता अग्नि और इसका छन्द गायत्री है। इस सूक्त में ९ मन्त्र हैं, जिसमें ५ मन्त्र विद्या, विज्ञान के बारे में हैं और ४ मन्त्र परमेश्वर को लेकर हैं। पिछले मन्त्रों में हमने परमेश्वर के स्वरूप के बारे में विचार किया, परमेश्वर के स्वभाव के बारे में विचार किया। उसकी उपासना कैसे की जाती है, कैसे की जानी चाहिए, उसके कितने स्तर हैं, इसके बारे में वेदमन्त्रों के संकेतों को समझा।

आज इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र की हम चर्चा करने जा रहे हैं। इस मन्त्र में, परमेश्वर हमें कठिनता से प्राप्त होता है या सहजता-सरलता से प्राप्त होता है? हमें प्राप्त होता है तो हमें क्या लाभ होता है? यह बात बहुत ही सहज शब्दों में बतायी गई है। हम जानते हैं कि वेद प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी शास्त्र है। यद्यपि वेद सर्वोच्च होने के कारण, सब शास्त्रों में मूर्धन्य होने के कारण, सर्व विद्यामय होने के कारण कठिन है, किन्तु वेद सबके लिए है, सर्वजन उपयोगी है, इसलिए जो बातें सबके लिए सहज समझने की हैं, उसमें सरल भी है। तो इस ९वें मन्त्र में परमेश्वर का बहुत सहज, सरल रूप प्रस्तुत किया गया है। लोग समझते हैं कि परमेश्वर हमारे लिए बड़ा कठिन है, बड़ा दुर्गम मार्ग है, उसको पाना असम्भव जैसा है, यह बात ठीक भी है, क्योंकि जब हमारे सामने संसार रहता है, संसार की वस्तुएँ रहती हैं, तो हमारा मन सांसारिक वस्तुओं की ओर स्वाभाविक रूप से जाता है। तो इन वस्तुओं की ओर जाने के कारण परमेश्वर की ओर जाना कठिन प्रतीत होता है। विपरीत दिशा में जाना, अपने आपको मोड़ना प्रयत्न साध्य है। इसलिए हमें लगता है, संसार बिना प्रयत्न के मिल रहा है और परमेश्वर को प्रयत्न से पाना पड़ेगा। वेद कहता है, जितना सहज यह संसार है उतना ही सहज परमेश्वर से मिलना है, क्योंकि मेरे और उसके बीच में जो सम्बन्ध हैं, वे सम्बन्ध जटिलता के हो ही नहीं सकते। वे सम्बन्ध सहजता के, आत्मीयता के हैं। तो फिर मेरा उससे मिलना कैसे कठिन हो सकता है? वह मेरे लिए हितकर है और हितकर चीज को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ, यह बात इस मन्त्र को देखने से पता लगती है।

इस मन्त्र में परमेश्वर के साथ जो मेरा सम्बन्ध बताया गया है वो उसकी प्राप्ति की सरलता बताने के लिए कहा गया है। कोई बात कितनी सरल हो सकती है उसको हम उदाहरणों से ही तो समझा सकते हैं। तो यहाँ दृष्टान्त देकर बताया गया- स नः पितेव सूनवे, स-वह परमात्मा, नः हमारे लिए। वह जो परमात्मा है वो हमारे लिए सूपायनो भव-सहजता से मिलने वाला होवे। आप जानते हैं, जो वेद की क्रिया है, वचन हैं वे सब समयों में,

सब कालों में घटते हैं। इसलिए वेद की बात को अलग-अलग वचन, काल में कहें, तो प्रसंग से जो बनता है उन्होंने उसे उसमें कह दिया। वह जहाँ-जहाँ जैसा-जैसा आवश्यक है वैसा-वैसा वहाँ गृहीत हो जाता है। मन्त्र में अग्नि को सम्बोधन है, अग्नि यहाँ परमेश्वर है, चेतन है। और उस चेतन के लिए उपमान भी ऐसा ही है कि वो परमेश्वर हमारे लिए उतना ही सहज, सरलता से प्राप्त होने योग्य है, होता है। 'पितेव' कि संसार में हमारे जो सम्बन्ध हैं, उनमें एक सम्बन्ध है पिता-पुत्र का। जैसे पिता चाहे राजा हो, पिता चाहे अधिकारी हो, पिता चाहे मजदूर-सेवक हो, जब वह पिता के रूप में होता है, तो उसका कोई भी पुत्र उससे दूर नहीं होता। उसके लिए पिता अप्राप्य नहीं होता, परिश्रम से प्राप्त नहीं होता, वह तो सहज उसका है, इसलिए प्राप्त होने का प्रश्न ही क्या होता है। वेद कहता है कि वह परमेश्वर हमारे लिए वैसा ही प्राप्त है, जैसा कि एक पुत्र के लिए पिता प्राप्त है।

परमेश्वर को समझाने के लिए हमारे यहाँ जो वस्तुएँ हैं, गुणों की दृष्टि से और जो सम्बन्ध हैं, आत्मीयता और निकटता की दृष्टि से, वे उदाहरण के रूप में आते हैं। संस्कृत में एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसमें हम परमेश्वर को अनेक तरह के नामों से पुकारते हैं, इतना ही नहीं उसमें जहाँ चेतन सम्बन्धों का उदाहरण मिलता है, वहाँ जड़ वस्तुओं का भी परमेश्वर के लिए उल्लेख मिलता है। उन पंक्तियों को हम सभी जानते हैं-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।।
त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देवः।।

यहाँ जो परमेश्वर है, देवाधिदेव है। हे सबसे बड़े देव! तुम मेरे माता हो, पिता हो, बन्धु हो, सखा हो। तुम ही मेरी विद्या हो, तुम ही मेरा धन हो। संसार का जो कुछ भी प्राप्तव्य है वह सब मेरे लिए तुम ही हो। यह बात यहाँ कैसे संगत है? जिसको हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसकी वस्तुएँ भी उसको प्राप्त होने पर स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए वस्तु के स्थान पर उसी को प्राप्त कर लेना सबसे उपयुक्त रहता है। यह सम्बन्ध वेद में अनेक स्थानों पर हमारे सामने आता है।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधाते सुम्नमीमहे।।

यहाँ परमेश्वर को माता-पिता दोनों कहा है। हे ऐश्वर्यवान् हे वास के हेतु! हे जीवन के आधार! हे सब प्राणियों के उत्पादक, पालनकर्त्ता, संरक्षक परमेश्वर! तुम हमारे पिता हो, तुम हमारी माँ भी हो। तुम शतक्रतु हो, हम तेरे से सुख की कामना करते हैं।

अब दो शब्दों का प्रयोग हम वेदमन्त्र के अन्दर देख रहे हैं- **त्वं हि नः पिता, त्वं माता**। जैसा हमने पहले निवेदन किया था- संस्कृत के प्रत्येक शब्द का अपना एक विशिष्ट अर्थ होता है। तो यहाँ पर भी जिस सम्बन्ध की 'पिता' शब्द से अभिव्यक्ति की गयी है, उस सम्बन्ध में वह बात घटित होनी चाहिए और होती है। जब हम पिता सम्बोधन करते हैं, तो उसका अर्थ आचार्य यास्क करते हैं- पाता वा पालयिता वा। कहा कि यह जो पिता शब्द बना है यह हमको प्राप्त कराने वाला होने से, पालन करने वाला होने से, रक्षा करने वाला होने से बना है। जब यह गुण एक सामान्य पिता में है, मनुष्य जब पिता बनता है, पिता कहलाता है, तब वह अपनी सन्तान का पालक होता है, तो यह पाता और पालयिता होने से पिता है, तो संसार का जो सबसे बड़ा पाता है, पालयिता है, जन्म देनेवाला है, वह फिर पिता कैसे नहीं होगा? इसलिए इस मन्त्र में कहा गया- **त्वं हि नः पिता**। हे प्रभु! तुम हमारे पिता हो। तुम हमारे उत्पादक हो, पालक हो, रक्षा करने वाले हो। इसलिए परमेश्वर को यहाँ पिता शब्द से पुकारा गया है। आगे कहता है, **त्वं माता शतक्रतो बभूविथ**- तुम शतक्रतु हो। सामान्य रूप से क्रतु यज्ञ को कहते हैं। कहते हैं कि इन्द्र ने सौ यज्ञ किए थे, इसलिए उसका नाम शतक्रतु हुआ। लेकिन निरुक्तकार कहता

है- **क्रतु कर्म च प्रज्ञा च**। क्रतु कर्म को भी कहते हैं और बुद्धि को भी कहते हैं। अर्थात् जिसकी बुद्धि असीम है, कार्य असीम हैं, हम उनको केवल होता हुआ देखते हैं, उसके नियम का पालन करना हमारी अनिवार्यता हो जाती है, उसके कर्म इतने विशाल हैं, इतने बड़े हैं कि वे मनुष्यों की बुद्धि में आ जाएं, यह सम्भव नहीं है। मनुष्य एकदेशी है, इसलिए स्वल्प ज्ञान, स्वल्प शक्ति, स्वल्प चेतना वाला है, तो वह परमेश्वर से सब कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे एक माता-पिता के पास जो योग्यता है, उसकी सन्तान के पास सारी योग्यता आ जाए, यह आवश्यक नहीं है, यह सम्भव नहीं है। यहाँ तो प्रयत्न से बढ़ भी सकती है। संसार में पिता से अधिक योग्य पुत्र देखा जा सकता है, किन्तु ईश्वर के साथ ऐसा नहीं है। जितना ज्ञान, बल और योग्यता है वह ईश्वर के अन्दर स्वतः ही है। उसको कोई लाँघ नहीं सकता। न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। न कोई उसके सम है, उससे अधिक होने का प्रश्न ही नहीं उठता। **पराऽस्य शक्तिः विविधैव श्रूयते**- हम सब उसके विविध सामर्थ्य को सुनते हैं, उनको एक साथ अनुभव करना सम्भव नहीं है। इसलिए इस मन्त्र में जो बात परमेश्वर के लिए कही गयी है- **त्वं हि नः पिता...शतक्रतो...सुम्नमीमहे।** 'सुम्न' कहते हैं सुख को, हम तेरे से सुख की कामना करते हैं। हमें सुख पाना है तो तेरे से ही प्राप्त कर सकते हैं। तो यहाँ कहा, हम सुखों को पाने वाले बनें और यह बात मन्त्र में इन सम्बन्धों से अभिव्यक्त की गयी है-

स नः पितेव सूनवेऽग्ने।

अध्यापकों की आवश्यकता

दिल्ली की प्रसिद्ध संस्था श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल खेड़ा-खुर्द, दिल्ली में अध्यापकों की आवश्यकता है। इच्छुक सज्जन सम्पर्क करें।

सम्पर्क सूत्र - आचार्य सुधांशु - ९३५०५३८९५२, ८८००४४३८२६

ठाकुर विक्रमसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ

महर्षि दयानन्द एवं आर्यसमाज के प्रति एकनिष्ठ दानवीर आर्यरत्न ठाकुर विक्रमसिंह १९ सितम्बर २०२३ को जीवन के ८० वर्ष पूर्ण करने जा रहे हैं। इस अवसर पर उनके सम्मान में प्रकाश्यमान अभिनन्दन ग्रन्थ हेतु विद्वज्जनों से लेख एवं कविताएँ आमन्त्रित हैं।

डॉ. आनन्द कुमार - आई.पी.एस. (सेवानिवृत्त) संयोजक-ठाकुर विक्रमसिंह, अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

ए-४१, द्वितीय तल, लाजपत नगर, II, नई दिल्ली-११००२४ दूरभाष-९८१०७६४७९५

परोपकारिणी सभा के आगामी शिविर व कार्यक्रम

०१.	दम्पती शिविर	-	२४ से २७ अगस्त-२०२३
०२.	डॉ. धर्मवीर स्मृति दिवस	-	०६ अक्टूबर-२०२३
०३.	साधना-स्वाध्याय-सेवा शिविर	-	२९ अक्टूबर से ०५ नवम्बर-२०२३
०४.	ऋषि मेला	-	१७, १८, १९ नवम्बर-२०२३

कृपया शिविर में भाग लेने के इच्छुक शिविरार्थी पूर्व से ही प्रतिभाग की सूचना दें।

अग्निहोत्र-अग्नि पर प्रतिक्रिया

श्री राजेश सेठी

परोपकारी जनवरी द्वितीय २३ में श्री वेदप्रकाश गुप्त का अग्निहोत्र की अग्नि से सम्बन्धित लेख प्रकाशित हुआ है। अनेक पाठकों ने दूरभाष के मध्यम से लेख में प्रकाशित विचारों पर अपनी असहमति व्यक्त की है, किन्तु लिखित रूप में श्री राजेश सेठी की प्रतिक्रिया प्राप्त हुई है इसे यथावत् प्रकाशित किया जा रहा है। -सम्पादक

आदरणीय श्री वेदप्रकाश गुप्ता जी का लेख जनवरी द्वितीय परोपकारी के अंक में पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण लेख को पढ़ने के बाद एवं इस पर चिन्तन करने के पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ कि लेखक का मुख्य उद्देश्य अग्निहोत्र की ऋषि निर्देशित पद्धति को स्वीकार न करते हुए लेखक द्वारा बताई गई ज्वालारहित कोयला या कण्डा की अग्नि को ही घृत एवं सामग्री की आहुतियाँ दे कर अग्निहोत्र कर्म की इति श्री मान लेना है। अपने मत की सिद्धि हेतु विद्वान् लेखक ने अति उत्साहित होकर महर्षि के विभिन्न मन्तव्यों से अपनी सुविधानुसार अर्थ निकालने में चेष्टा की है, जिसे मैं तो क्या कोई भी स्वाध्यायशील ऋषि भक्त आर्य स्वीकार नहीं कर सकता। इस हेतु मैं उनके लेख पर बहुवार चर्चा करना चाहूँगा।

सर्वप्रथम लेखक का कहना है हमें किन्हीं भी त्रुटियों का ज्ञान होने पर सुधार करने में किसी की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि जिसको हम अल्पज्ञ त्रुटि मान रहे हैं, क्या वह वास्तव में त्रुटि है? इसका निर्णय तो आप्त पुरुषों या वेद के आधार पर ही हो सकता है। हम स्वयं इसके लिये स्वतन्त्र नहीं हैं, ऋषिकृत ग्रन्थ हमारे लिये मार्गदर्शक हैं।

जब आप विभिन्न यज्ञों की चर्चा करते हैं तो इसका आशय पंचमहायज्ञ होता है, जिसके तीन यज्ञों में तो अग्नि का विधान ही नहीं है। मात्र देवयज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञों में अग्नि का विधान है। देव यज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ की प्रक्रिया एवं उद्देश्य भी अलग-अलग हैं। बलिवैश्वदेव यज्ञ के लिये भी मात्र चूल्हे की अग्नि को अलग धर कर मन्त्रों से १० आहुति का विधान करते हैं।

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में ऋषि लिखते हैं कि इन प्रत्येक मन्त्रों से एक-एक बार प्रज्वलित अग्नि में घी छोड़ें। पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशा से क्रमानुसार यथाक्रम भाग रखें।

अग्निहोत्र के उद्देश्य के सम्बन्ध में आपने लिखा है समस्त प्रकार के यज्ञों का लक्ष्य वाष्प अर्थात् वायु को सुगन्धित करना होता है। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि अग्निहोत्र का उद्देश्य मात्र इतना ही नहीं है। अग्निहोत्र का उद्देश्य हव्य पदार्थ का उसके सूक्ष्म पदार्थों में विखण्डन करना है, उस विखण्डन प्रक्रिया में ही हमें सुगन्धि भी प्राप्त होती है। मूलतः यज्ञ का उद्देश्य पर्यावरण की शुद्धि एवं विषाक्त कीटाणु को नष्ट करना है। अतः महर्षि द्वारा अग्निहोत्र की ज्वालायुक्त अग्नि में आहुति देने का निर्देश सर्वथा उपयुक्त है। हम भौतिक रूप में कितने भी बड़े वैज्ञानिक अथवा ज्ञानी हो जायें तो भी आप्त पुरुषों के द्वारा प्राप्त ज्ञान के सामने हमारा ज्ञान तुच्छ है। यदि ऋषि को कण्डे की अग्नि पर ही यज्ञ का विधान करना होता तो यज्ञ कुण्ड की आकृति, समिधा चयन, घी की मात्रा एवं उसको विशिष्ट गुण युक्त करने की क्रिया आदि सर्वथा व्यर्थ होती। लेखक द्वारा समिधा का अर्थ घृत एवं हव्य का मिश्रण लेना भी ठीक नहीं है। समिधा का अर्थ ही यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली आम, पलाश आदि की लकड़ी से होता है। समिधा का अर्थ जो सम्यक् प्रकार का ईंधन हो।

लेखक का कहना कि महर्षि द्वारा आहुति का ज्वालायुक्त अग्नि पर डालने का निर्देश उचित नहीं है,

क्योंकि उनके द्वारा इस निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति नहीं होती। लेखक के अनुसार यज्ञ का लक्ष्य आहुतियों का वाष्प में परिवर्तित करना, सुगंधित औषधियों का नासिका द्वारा ग्रहण होना तथा हवा में फैलाना है, परन्तु यज्ञ करने का उद्देश्य मात्र इतना ही नहीं है, यज्ञ का उद्देश्य आहुत पदार्थों को सूक्ष्म कर उसको वातावरण में विखण्डित कर वायुमण्डल की गुणवत्ता में वृद्धि कर उसको विशुद्ध कर विषाक्त कीटाणुओं का नष्ट करना तथा उसे स्वास्थ्य के लिए लाभकारी बनाना है। इसीलिये हव्य पदार्थों में मात्र सुगन्धित पदार्थ का ही विधान नहीं है, अपितु औषधियों, मिष्ट पदार्थ एवं रोगनाशक पदार्थों का भी विधान किया है। विचारणीय है कि क्या हम स्वयं को महर्षि के चिन्तन से विमुख कर दयानन्दी कहने के योग्य हैं?

इससे भी आगे बढ़ते हुए लेखक ज्वालायुक्त अग्नि की तुलना ज्वालामुखी की विस्फोटक अग्नि से करते हैं, जो किसी भी दृष्टि से संगत नहीं कहा जा सकता। ज्वालामुखी का विस्फोट एक संसर्ग से भूगर्भीय प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है पृथ्वी के गर्भ में समाहित अनेकानेक विषाक्त पदार्थों के अनेकानेक वर्षों से चल रही भूगर्भीय घटनाओं एवं रासायनिक पदार्थों का दबाव जब अत्यधिक असामान्य रूप से बढ़ जाता है, तभी ज्वालामुखी विस्फोट होते हैं, जिनका विधिवत् समिधा एवं घृत-आहुतियों द्वारा प्रज्वलित अग्नि से दूर-दूर का सम्बन्ध भी नहीं है। ज्वालारहित अग्नि में पदार्थ पूर्णतः दहन ही नहीं हो पाते, उनके विघटन एवं गुणधर्म में वृद्धि का तो प्रश्न ही नहीं आता। उसमें डाले गये पदार्थ स्थूल रूप से तो हमें सुगन्ध प्रदान कर सकते हैं, परन्तु उनका हल्के हो वायुमण्डल में विस्तीर्ण होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

निश्चित ही अग्नि जड़ पदार्थ है, परन्तु इसकी गणना जड़ देवताओं एवं आठ वसुओं में की गई है इसके गुणधर्म स्वभाव प्राणिमात्र को ऐश्वर्य एवं सुख प्रदान करने वाले हैं। ताप, दाहकता, प्रकाश, विखण्डन करने एवं शुद्धिकरण करने की शक्ति इसके विशिष्ट गुण हैं। विभिन्न अवस्थाओं में इसके गुण धर्म अलग-अलग लाभ पहुंचाते हैं। निश्चित रूप से ज्वालायुक्त अग्नि के अपने विशिष्ट गुण होते हैं इसीलिये महर्षि यज्ञ की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं जब तक इस देश में राजे महाराजे अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ करते रहे, यहाँ अनावृष्टि या अतिवृष्टि नहीं होती थी। ऋषि सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि पेज-४१ अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है। यदि अन्य विभिन्न विद्वानों ने भी यज्ञ सम्बन्धी विस्तृत भाष्य किया हो तो वह ऋषि के मन्तव्यों के अनुकूल होने से स्वीकार्य होना चाहिये। इसी सन्दर्भ में लेखक मुण्डकोपनिषद् के मन्त्र १/२/४ के महात्मा नारायण स्वामी लिखित भाष्य को उद्धृत करते हैं। इस विषय पर विचार करने पर ज्ञात होता है वहाँ भी यज्ञाग्नि में प्रज्वलित सप्तजिह्वा अर्थात् सात उद्दीप्त ज्वालाओं का वर्णन है। इसमें सुलोहिता का अर्थ भी लाल रंग की लपट वाली ज्वाला का ही निकलता है। आप कितना भी प्रयास करें इससे लाल रंग के कोयले आग कण्डे की अग्नि के रूप में किसी भी प्रकार इसका अर्थ सम्भव नहीं तथा इसी भाष्य में आगे मन्त्रों को भी आलंकारिक परिभाषित किया है।

ज्वालायुक्त अग्नि का अर्थ ही सामान्य रूप से भौतिक अग्नि किया जा सकता है, जिसमें से लपटें निकल रही हों, तप्त कोयले या कण्डे की मात्रा अग्नियुक्त कोयला या कण्डा कहा जा सकता है। मात्र खींचतान करने से अर्थ का अनर्थ ही होगा। वेद का भाष्य करते हुए तो अग्नि के प्रकरणानुरूप अनेक यौगिक अर्थ होते हैं जैसे परमात्मा, जीवात्मा, जठराग्नि, संकल्पाग्नि।

जब हम अग्निहोत्र में महर्षि दयानन्द द्वारा विनियोग किये गये मन्त्रों की चर्चा करते हैं तब हमें ध्यान रखना होगा कि सभी वेदमन्त्रों के आधिभौतिक, आध्यात्मिक,

आधिदैविक तीन प्रकार के अर्थ किये जाते हैं। सामान्यत: वेद भाष्य करते हुए महर्षि आध्यात्मिक अर्थ करते हैं जिनका विद्वान् लेखक ने अपने लेख में वर्णन किया है, परन्तु जब इन मंत्रों का विनियोग हम अग्निहोत्र में करते हैं तो अग्न्याधान से लेकर पंचघृताहुति, जलप्रसेचन तक अन्य प्रक्रिया में उपयुक्त मन्त्रों का ऋषि द्वारा जो अग्निहोत्रपरक मन्त्रार्थ किया है, उसको ही प्रयोग में लाना होगा। जैसे कि सन्ध्या में विनियोजित मनसा परिक्रमा मत्रों के संध्या के समय ईश्वर परक अर्थों का ही चिन्तन किया जाता है। जबकि भाष्य करते हुए इनका अर्थ अन्य रूप में किया जाता है। इसी प्रकार जब हम अग्न्याधान मंत्र का (**ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।।**) उच्चारण करते हैं, तो इसका अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जो पञ्च महायज्ञविधि में यज्ञपरक किया है। वह निम्न प्रकार है– 'हे अग्नि, तू प्रदीप्त हो खूब जागृत हो तू और यह यजमान इष्टयज्ञादि और पूर्त्त कुआ और धर्मशाला, पाठशाला आदि बनवाने के शुभकार्यों का मिलकर सम्पादन करो। इस श्रेष्ठ मिलकर बैठने के स्थान पर सब विद्वान् लोग और यजमान बैठें। **सुसमिद्धाय** का अर्थ भी महर्षि अच्छी प्रकार प्रदीप्त ही करते हैं। इस सन्दर्भ में यदि हम पं. मदनमोहन विद्यासागर द्वारा रचित पंच यज्ञ प्रकाश को देखें तो समस्त अर्थ स्पष्ट हो जायेगा। इस प्रकार सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन का अर्थ भी अग्नि का अधिकाधिक प्रज्ज्वलित करने के उद्देश्य से ही किया गया है। वास्तव में अध्याधान से पंच घृताहुति तक समस्त प्रक्रिया यज्ञ में दी जाने वाली १६ आहुतियों को ऊष्ण एवं विखण्डन हेतु ज्वाला युक्त एवं तीव्र बनाने के लिये ही है।

महर्षि द्वारा यज्ञ प्रक्रिया के साथ मन्त्रों का समायोजन यज्ञ प्रक्रिया का आवश्यक भाग है। इन मंत्रों का पाठ एवं इसके साथ आहुतिदान यज्ञ में आवश्यक है। अन्य वेदमन्त्रों से भी अतिरिक्त आहुति दी जा सकती है। महर्षि द्वारा अग्निहोत्र करने का उद्देश्य मात्र सुगन्धि का विस्तार करना ही नहीं अपितु हव्य पदार्थों को विखण्डित कर वातावरण को शुद्ध करना है। यज्ञविज्ञान के सम्बन्ध में पूर्व में वैदिक विद्वानों द्वारा लिखित यज्ञ प्रक्रिया ज्वालायुक्त अग्नि में ही ऋतु अनुकूल डाली गई हव्य सामग्री का यथेष्ट विखण्डन जिससे कि यथेष्ट पदार्थों का रासायनिक विखण्डन सम्भव है, स्वीकार करते हैं। निश्चित रूप से पदार्थों का वाष्पन एक सीमा तक ही मात्र स्थूल सुगन्धि प्रदान कर सकता है। पदार्थों के विखण्डन से उत्पन्न होने वाला लाभ इस प्रक्रिया में सम्भव ही नहीं। महर्षि ने यज्ञकुण्ड को निश्चित आकार में बनाने का जो निर्देश दिया उसका मूल उद्देश्य ही पूर्ण प्रज्ज्वलित अग्नि से हव्य पदार्थों के विखण्डन द्वारा वातावरण में फैलने वाले सूक्ष्म पदार्थों का लाभ लेना था। जहाँ तक अग्निहोत्र के वैज्ञानिक विश्लेषण का प्रश्न है तो इस विषय पर अनेकानेक अनुसन्धान किये गये हैं तथा किये जा रहे हैं। सभी में महर्षि द्वारा प्रतिपादित तथ्यों की पुष्टि हुई है। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए 'अग्निहोत्र–विज्ञान की दृष्टि में' श्रद्धेय स्वामी विवेकानन्द सरस्वती लिखित पुस्तक का अवलोकन कर सकते हैं। इसमें कोई संशय नहीं कि अग्नि प्रज्वलित करने पर वातावरण में उपलब्ध ऑक्सीजन का उपयोग होता है एवं कार्बन डाईऑक्साईड बनती है।

परन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करें तो वह अग्नि जो धीमी जलती है तथा जिसमें धुआँ उत्पन्न होता है उसमें कार्बन डाईऑक्साईड के साथ कार्बन मोनोऑक्साईड भी अत्यधिक उत्पन्न होता है, जो कि पूर्णतया प्राणघातक गैस है। इस सम्बन्ध में हम अनेक बार अनेक दुर्घटनाओं के बारे में समाचार पत्रों में पढ़ते रहते हैं। अत: किसी भी स्थिति में ज्वालारहित कोयले या कण्डे की अग्नि को यज्ञ के रूप में उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। यहाँ तक कि आपने धीमी आँच पर भोजन की पौष्टिकता की

चर्चा की है। इस प्रक्रिया का यज्ञ से कोई सम्बन्ध नहीं है।

आपने महर्षि स्वामी दयानन्द जी द्वारा सत्यार्थप्रकाश में उल्लिखित घृत एवं सामग्री की मात्रा को वर्तमान समय में महँगे होने का उल्लेख करते हुए इसकी उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाया है। इस पर विचार करें कि समस्त पदार्थ जो हम अपने जीवन में उपयोग करते हैं क्या महंगे होने के कारण वह उपयोगी नहीं रहते या हम महंगे पदार्थों का उपयोग नहीं करते? जबकि यज्ञ में डाले गए पदार्थ कई गुना उपयोगी होकर हमें लाभ पहुंचाते हैं। इस दृष्टि से तो हम अपने चेतन देवताओं माता-पिता, आचार्य आदि को भी यथेष्ट भोजन एवं आहार प्रदान न करके पाप के भागी बनेंगे। आपने अपने लेख में यह निष्कर्ष निकाला है कि अग्निहोत्र के धूम से कोई बादल नहीं बनते हैं। तो क्या हम योगेश्वर भगवान् कृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता में कहे गए इस श्लोक-

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी इस विषय में जो कहा है ''अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वासस्पर्श खान-पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना, इसलिये इसको देवयज्ञ कहते हैं।'' क्या इसको भी असत्य मानकर उनके ज्ञान एवं विवेक पर सन्देह कर उनको मिथ्यावादी मान लें?

निश्चित रूप से कोई भी विवेकशील पुरुष आपके द्वारा प्रस्तुत की गई तुलना में महर्षि दयानन्द एवं योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसे आप्त पुरुषों के कथन को ही महत्त्व देगा। बलिवैश्वदेव यज्ञ एवं अनिहोत्र यज्ञ दोनों अलग-अलग विधायें हैं। बलिवैश्वदेवयज्ञ का महत्त्व अत्यन्त सीमित है एवं अग्निहोत्र यज्ञ का महत्त्व बहुत विस्तृत एवं असीमित है। बलिवैश्वदेव यज्ञ को किसी भी रूप में अग्निहोत्र यज्ञ के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। महर्षि के मन्तव्य सिद्धान्तों एवं उनके द्वारा निर्देशित कर्मकाण्डों का पालन करना सभी आर्यों का परम कर्त्तव्य है। मात्र आत्मश्लाघा की इच्छा से उनके द्वारा प्रतिपादित प्रक्रिया में दोष निकालना किसी को भी शोभा नहीं देता। अतः ऋषि मन्तव्यों के विरुद्ध लिखे गए लेख समादरणीय नहीं हो सकते।

थापर नगर, मेरठ। ७५३४८९३०८४

वृष्टि यज्ञ आरम्भ

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी सतनाम जीव सेवा समिति एवं परोपकारी सभा अजमेर द्वारा दिवंगत श्रद्धेय स्वामी हीरदाराम साहिब (पुष्करराज) जी के निर्देश की पालना एवं पूज्यनीय सिद्ध भाऊ जी की प्रेरणा से लगातार ३४१वाँ वार्षिक वृष्टि यज्ञ शुक्रवार दिनांक ३० जून २०२३. प्रातः ८ से ९.३० तक ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में आरम्भ होगा। सभी धर्म प्रेमी एवं सेवादारियों से निवेदन है कि सपरिवार पधार कर वृष्टि यज्ञ का पुण्य प्राप्त करते रहें।

निवेदन

जीव सेवा समिति अजमेर

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

साम-गान का आदि-स्त्रोत और उद्देश्य

श्री पं. जगत् कुमार शास्त्री

कहते हैं कि उद्गीथ विद्या में तीन विद्वान् बहुत अधिक प्रसिद्ध थे। एक शलावत का पुत्र शिलक, दूसरा चकितायन का पुत्र दाल्भ्य और तीसरा जीवल राजा का पुत्र प्रवाहण। एक दिन वे तीनों आपस में बोले कि हम तीनों ही उद्गीथ विद्या में पारंगत हैं। अत: आओ हम आपस में मिलकर इस विद्या का विशेष विचार करें और इस विषय में अपने-अपने विचार प्रकाशित करें। सभी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। वे सुखपूर्वक बैठकर विचार करने लगे।

प्रवाहण ने कहा- ''पहिले आप दोनों अपना संवाद आरम्भ करें। मैं उसे ध्यान से सुनूंगा।''

इस पर शिलक ने कहा- ''यदि आप पसन्द करें, तो मैं कुछ सवाल पूछता हूँ।''

दाल्भ्य ने इसे स्वीकार किया। दोनों का संवाद आरम्भ हो गया।

शिलक- सामवेद की क्या गति है?

दाल्भ्य- सामवेद की गति स्वर है।

शिलक- स्वर की क्या गति है?

दाल्भ्य- स्वर की गति प्राण है।

शिलक-प्राण की क्या गति है?

दाल्भ्य- प्राण की गति अन्न है।

शिलक- अन्न की क्या गति है?

दाल्भ्य- अन्न की गति जल है।

शिलक- जल की क्या गति है?

दाल्भ्य- जल की गति वह लोक है। अर्थात् स्वर्गलोक जल की गति है।

शिलक- उस लोक की अर्थात् स्वर्गलोक की क्या गति है?

दाल्भ्य- स्वर्गलोक की गति के विषय में कोई प्रश्न पूछना उचित नहीं है। हम लोग साम-गान करते हैं और स्वर्गलोक की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। साम-गान के अनुष्ठान से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है, इस बात को भी हम सब भली प्रकार जानते ही हैं। स्वर्गलोक एक श्रेष्ठ और उच्चतर भूमिका है। यह एक उचित सीमा भी है। उससे आगे बढ़ना उचित नहीं।

शिलक- यदि यही बात है, तब तो आपकी विद्या और आपका अनुभव बहुत ही कम है। यदि कभी कोई साम-गान का श्रेष्ठ विद्वान् आपसे इस विषय में वार्तालाप करेगा तो आपको बहुत लज्जित होना पड़ेगा। आपकी इतनी अधिक बदनामी होगी कि आप किसी को मुँह दिखलाने के योग्य भी न रहेंगे। आपका सामगान तो बहुत अधिक त्रुटिपूर्ण है, सामगान की पूरी-पूरी जानकारी आपको नहीं है।

दाल्भ्य- यदि मेरे विषय में आप ऐसा ही समझते हैं, तो आप कृपा करके मुझे साम-गान का सांगोपांग प्रकार और पूरा-पूरा रहस्य समझाने की कृपा करें, जिससे मेरा ज्ञान बढ़े और कभी कहीं लज्जित होने का प्रसंग भी न आये।

शिलक- अच्छी बात है। अब आप प्रश्न आरम्भ करें और मैं जो उत्तर दूँ, उनको भली प्रकार सुनें।

दाल्भ्य- उस लोक अर्थात् स्वर्गलोक की क्या गति है?

शिलक- उस लोक अर्थात् स्वर्गलोक की गति यह लोक अर्थात् पृथिवी-लोक है।

दाल्भ्य- इस लोक की क्या गति है?

शिलक- बस, इससे आगे कोई प्रश्नोत्तर करना उचित नहीं है, क्योंकि सामगान के द्वारा इस सबकी धारण करने वाली पृथिवी की ही स्तुति की जाती है। यह एक अधिक उच्चतर भूमिका और उचित सीमा है।

शिलक और दाल्भ्य के पारस्परिक वार्तालाप को प्रवाहण पूर्ण मनोयोग के साथ सुन रहा था। जब शिलक ने कहा कि बस यह पृथिवी ही साम-गान की अन्तिम सीमा है और इससे आगे कोई प्रश्न नहीं करना चाहिये,

तब वह मौन न रह सका। शिलक को सम्बोधित करके प्रवाहण ने कहा-

''हे शिलक! साम-गान के विषय में आपका ज्ञान भी थोड़ा और बहुत अधिक त्रुटिपूर्ण है। इसके साथ ही वह कुछ उपयोगी भी नहीं है। यदि कोई साम-गान का विशेषज्ञ आपसे इस विषय में बातचीत करेगा, तो आपको अवश्य ही अपमानित होना पड़ेगा और लज्जा से अभिभूत होकर आप किसी को मुँह दिखाने के योग्य भी न रहेंगे। आपका साम-गान तो बहुत अधिक संकीर्ण और सीमित है।''

इस पर शिलक ने प्रवाहण से कहा- ''मैं जितना और जो कुछ जानता था, यह सब मैंने बतला दिया है। इससे आगे की जानकारी मुझे नहीं है। यदि आप उचित समझें तो इससे आगे की सभी बातें मुझे विवरण सहित बतलाने की कृपा करें, जिससे कि मेरी जानकारी बढ़े और मुझे कहीं लज्जित भी न होना पड़े।''

इस पर प्रवाहण ने कहा- 'अच्छी बात है, अब आप प्रश्न करें और मैं जो उत्तर दूँ, वे सुनें।'

शिलक- इस लोक अर्थात् पृथिवी लोक की क्या गति है?

प्रवाहण- पृथिवी-लोक की गति आकाश है।

सब प्राणी और सब पदार्थ आकाश से ही पैदा होते हैं और फिर उचित अवसर आने पर आकाश में ही समा जाते हैं। आकाश ही इस दृश्य-जगत् का उद्गम स्थल है, आकाश ही इसका सहारा है। आकाश ही इसका अन्त अथवा लय-स्थल है। जिसको उद्गीथ कहते हैं, यह साम-गान है, और जो साम-गान है, वह उद्गीथ ही है। यह उद्गीथ=प्रणव=ओंकार ही सर्वश्रेष्ठ है, असीम है। जो इस प्रकार असीम और अनन्त समझकर उद्गीथ का गान करता है, उसका सब प्रकार से कल्याण होता है। वह जीवन के सर्वोपरि उद्देश्य को प्राप्त करता है, सब प्रकार के आनन्द को भोगता है, लगातार उन्नति करता है और एक के बाद दूसरी अधिक महत्त्वपूर्ण सफलता को प्राप्त करता हुआ अन्त में मोक्षपद को भी प्राप्त कर लेता है।

शौनिक के पुत्र सुधन्वा ने उदर शाण्डिल्य को इस साम-गान अथवा उद्गीथ का उपदेश किया था और यह भी कहा था कि जब तक तेरी सन्तान इस साम-गान को स्मरण रखेगी और इसके अनुसार सामगान करती रहेगी, तब तक संसार में वह सर्वश्रेष्ठ प्रकार का जीवन व्यतीत करेगी। वह सब प्रकार से सम्पन्न और स्वतन्त्र रहेगी। अत: साम-गान की अन्तिम सीमा आकाश है। आकाश तो अन्तहीन ही है। जो इस साम-गान को जानता और गाता है, वह भी उच्च-जीवन को प्राप्त कर लेता है, उसका जीवन उच्च, उच्चतर और श्रेष्ठतम हो जाता है। वह इस लोक में भी सफल होता है, परलोक में भी। इसके साथ ही यह बात भी ध्यान देने की है कि जिस प्रकार यह साम-गान या उद्गीथ=ओंकार और आकाश अन्तहीन है, उसी प्रकार इस साम-गान, उद्गीथ गान वा ओंकारोपासना का फल भी अन्तहीन है।

यह छान्दोग्योपनिषद् के पहले प्रपाठक के आठवें और नौवें खण्ड की कथा है। इस कथा में साम-गान और उद्गीथ एक ही कर्म के दो नाम हैं। साम-गान का उद्गम कहाँ से होता है और साम-गान का अन्तिम उद्देश्य या लक्ष्य क्या है? यह इस कथा में संक्षिप्त और स्पष्ट-रूप में दर्शाया गया है। हम ज्यों-ज्यों इस कथा पर विचार करते हैं, त्यों-त्यों ही अधिक गूढ़ और महत्त्वपूर्ण रहस्यों का पता चलता है और इस कथा की सुन्दरता एवं प्रतिपादन की शैली का भी मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। विचारोपरान्त मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी सामने आ जाता है। यद्यपि यह एक छोटी सी कहानी है। तथापि इसमें उपनिषदों की कुछ अन्य कहानियों जैसी जटिलता नहीं है। यह उत्तम कहानी है। मानव जीवन को, मानव जीवन की उच्चतर भूमियों को और मानव जीवन के उद्देश्य को यह भली प्रकार जताती है।

स्थूल रूप में साम-गान का अभिप्राय है-ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना। मीठे-मीठे, उत्तम अर्थों वाले एवं सुरीले भजनों, गीतों, श्लोकों वा छन्दों को सुर,

ताल और यन्त्रों की सहायता के साथ गाने को भी हम साम-गान कह सकते हैं। साम-गान= शान्त-गान वा आनन्द-गान। भगवान् के पवित्र और निज-नाम 'ओंकार' को भी इसीलिये उद्गीथ कहते हैं कि भक्त लोग उसे प्रेमपूर्वक सुर, ताल और लय के साथ गाया करते हैं। इस प्रकार गा-गा कर वे अपने क्लेश मिटाया करते हैं।

बड़े-बड़े यज्ञों में 'उद्गाता' सामवेद के जिस भाग वा अंश को गाता है, उसे उद्गीथ कहते हैं। इसी प्रकार 'प्रस्तोता' जिस भाग को गाता है, उसे प्रस्ताव कहते हैं। जिस भाग को प्रतिहर्त्ता गाता है, उसे प्रतिहार कहते हैं। विभिन्न ग्रन्थों में और उन-उन ग्रन्थों के विभिन्न प्रकरणों में भी साम-गान अथवा उद्गीथ का उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रकार से विस्तार पूर्वक किया गया है। यद्यपि उन उल्लेखों में कोई आधारभूत भेद नहीं है, एक से दूसरे उल्लेख का विरोध तो सर्वथा ही नहीं है, फिर भी शब्दों और वर्णन शैली का भेद तो है ही। अल्पश्रुत लोगों और विद्यार्थी वर्गों को उद्गीथ के भिन्न-भिन्न प्रकार के उल्लेखों को देखकर कुछ सन्देह भी हो सकता है। अतः यह विचार सभी अध्यात्मवादियों को अपने-अपने हृदय में सुदृढ़ कर लेना चाहिये कि ओंकारोपासना, उद्गीथोपासना, साम-गान और मधुर गीतों के गान और विचार के साथ ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना ये सब एक ही अनुष्ठान के विभिन्न नाम हैं। यही कारण है कि इस कहानी का आरम्भ तो उद्गीथ के वर्णन के साथ होता है और जब गति का विचार किया जाता है, तब साम-गान का प्रतिपादन आरम्भ हो जाता है। आगे पृथक् रूप में इस कहानी के विषय में विस्तृत विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं। **(क्रमशः)-आर्यमार्तण्ड से साभार**

दम्पती शिविर

दिनांक २४ अगस्त (गुरुवार) से २७ अगस्त (रविवार) २०२३ तक

स्थान - पुष्कर मार्ग, ऋषि उद्यान, अजमेर

दम्पती अर्थात् पति-पत्नी गृहस्थ के आधार होते हैं। पति-पत्नी का परस्पर प्रिय सम्बन्ध पूरे गृहस्थ आश्रम व समीपस्थ परिजनों-मित्रों को सुप्रभावित करता है। पति-पत्नी की परस्पर प्रियता-अप्रियता की न्यूनाधिकता उनके परस्पर व्यवहार की कुशलता-अकुशलता पर निर्भर करती है। दोनों का सुख-दुःख इसी पर आश्रित है।

परस्पर प्रियता-सुख-शान्ति का जो स्तर पति-पत्नी चाहते हैं, वह प्रयत्न-पुरुषार्थ के अनुसार न्यूनाधिक रहता है। न्यूनता को हटाने के लिए उपायों की जिज्ञासा बनी रहती है। यदि आप में ऐसी जिज्ञासा है तो यह शिविर आपके लिए उपयोगी है।

आप इस शिविर में जहाँ दाम्पत्य जीवन की वैदिक दृष्टि से अवगत होंगे, वहाँ आपके दाम्पत्य जीवन की समस्याओं का आध्यात्मिक-व्यावहारिक समाधान भी मिल सकेगा। पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपसी सम्बन्ध को बढ़ाने में सहायक होगा। आइये एक प्रयास इस दिशा में भी करके गृहस्थ को स्वर्गाश्रम की ओर ले चलें।

शिविर के प्रशिक्षक हैं- मुनि सत्यजित् एवं मुनि ऋतमा।

इस आवासीय शिविर हेतु **२३ अगस्त को सायं ४ बजे तक पहुँच जाना है**। शिविर की समाप्ति २७ अगस्त को अपराह्न ४ बजे तक होगी। आप अनुकूलता से एक दिन आगे-पीछे २३ अगस्त को आ सकते हैं व २८ को प्रस्थान कर सकते हैं। संख्या सीमित रहेगी। अपना आवेदन देकर स्वीकृति मिलने पर शिविर शुल्क जमा करा देवें। आवेदन का अन्तिम दिन १५ अगस्त है। **शिविर शुल्क १०००/-प्रति व्यक्ति है। निवास शुल्क :** सामूहिक-निःशुल्क, पृथक् कक्ष- १०००/- (पंखा), २०००/- (कूलर), ३०००/- (ए.सी.) अतिरिक्त रहेगा। असमर्थ किन्तु योग्य दम्पती को शिविर शुल्क में छूट दी जा सकती है। शिविर में पति-पत्नी दोनों का आना आवश्यक है, बच्चों को साथ नहीं लाया जा सकता है। मोबाईल आदि सम्पर्क-उपकरणों का प्रयोग निषिद्ध रहेगा, इन्हें कार्यालय में जमा करा देना है।

सम्पर्क - वाट्सएप्प- ९३१४३९४४२१ (नन्दकिशोर जी) ई-मेल- psabhaa@gmail.com

संस्था समाचार

आचार्य विद्यानन्द जी ने बताया कि कोई भी कार्य अचानक नहीं होता। महाभारत होने से पहले ही महाभारत युद्ध की पूर्व तैयारियाँ हो चुकी थी। पहले ही छोटे-छोटे युद्ध हो चुके थे। कौरवों का पाण्डवों से बचपन से ही राग-द्वेष प्रारम्भ हो चुका था। शकुनि को भी अपनी बहन का बदला लेना था। दुर्योधन की दुष्ट बुद्धि थी। धृतराष्ट्र भी पुत्र मोह में अन्धे हो चुके थे। जब युद्ध का निश्चय हो जाता है और अर्जुन युद्ध भूमि में अपने दादा, चाचा, मामा आदि को देखकर युद्ध करने से मना कर देता है। तब अर्जुन को समझाने के लिए श्रीकृष्ण जी गीता का उपदेश करते हैं और यह श्रीकृष्ण जी का गीता का जो उपदेश है वह हमारे जीवन के लिए भी आवश्यक है। हमें अपने मन को कैसे संतुलन में रखना है। आत्मा का स्वरूप क्या है। यह गीता का दूसरा अध्याय हमें बताता है।

हिसार से पधारे स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने बताया कि हमारी वैदिक संस्कृति कितनी महान् थी, आज मनुष्य अपनी सन्तानों को पढ़ा लिखाकर डॉक्टर, इंजीनियर आदि बना देता है पर उनके अन्दर संस्कार नहीं डालता इसलिए वह माता-पिता को वृद्ध आश्रम में भेज देते हैं। हमारे अन्दर दूसरों के कल्याण करने की जो भावना है, वह यज्ञीय भावना है। हम आंखों से भद्र देखें। कानों से भद्र सुने। मन, बुद्धि और शरीर के सभी अंगों से दूसरे का कल्याण करें। यही सभी अंगों से यज्ञ करना है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की २००वीं जयंती के अवसर पर २०१ कुण्डीय चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ का संकल्प लेकर प्रचार-प्रसार में निकले उत्तर प्रदेश के आचार्य श्री मुनि शुचिषद् जी ने बताया कि हर मनुष्य के अंदर दस, बीस प्रकार का व्यक्ति रहता है। साधना नहीं करते हैं तो साध्य से हम दूर हो जाते है। मनुष्य चार प्रकार से अपना जीवन जीता है। कुछ मनुष्य केवल शरीर के स्तर पर जीते हैं, खाना-पीना बस शरीर तक ही सीमित रहते हैं। कुछ मनुष्य उसके ऊपर मन के स्तर पर जीते हैं जो कि पाप नहीं करते हैं। शरीर से अपराध किया जाता है और मन से पाप किया जाता है। कुछ बुद्धि के स्तर पर जीते हैं। जो उचित-अनुचित का निर्णय करके उचित कार्यों को करते हैं और अन्त में चौथी स्थिति जो केवल आत्मा के स्तर पर जीते हैं, उनके लिए संसार में कोई भेद नहीं होता, वह ना किसी की हानि पहुंचाते हैं। वह सभी का कल्याण चाहते हैं, उनके अंदर ईर्ष्या-राग-द्वेष आदि नहीं होता। वह अपना सुख और दूसरों के लिए भी सुख उत्पन्न करते हैं, ऐसे जो चौथे प्रकार का जीवन है। उसी से मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। मूर्तिपूजा करना ही पाखण्ड नहीं है, जो कहे वह ना करना वह भी पाखण्ड है, जिसको अच्छा समझता है, जिसकी प्रशंसा करता है, उसको नहीं करता, यह भी पाखण्ड है, जिसकी निन्दा करता है, जिसको खराब समझता है, दूसरा यदि वह क्रिया मेरे साथ करे तो मैं नाराज होता हूँ, मुझे खराब लगता है और उसी क्रिया को मैं दूसरों के साथ करता हूं तो फिर मैं पाखण्डी हूँ। पाखण्डी व्यक्ति सुख चैन से नहीं जी सकता और यदि सुख चैन से जीना है तो हमें पाखण्ड को छोड़ना होगा।

सभा के सहयोगी श्री देवमुनि जी ने अथर्ववेद के मन्त्र के आधार बताया कि हम एक-दूसरे की ओर परस्पर स्नेह से बढ़े। परिवार में, समाज में, राष्ट्र में एक दूसरे का हित सोचते हुए, एक दूसरे के प्रति प्रेम, आदर का भाव रखते हुए, एक दूसरे का सहयोग करते हुए आगे बढ़े और यह मानसिक सात्विक भाव ज्ञान के माध्यम से होता है। हमें इसके लिए वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करते रहना चाहिए। ऋषिकृत् ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। इससे हमारे मन में सात्विक वृत्ति बढ़ती है। हम जैसे अपने लिए सुख चाहते हैं वैसे दूसरे के लिए भी सुख चाहेंगे। हमारे माता-पिता आदि

ने कितने कष्ट सहन कर हमारा पालन-पोषण किया है हमें भी वृद्धावस्था में उनकी यथावत सेवा सहयोग करना चाहिए।

स्वामी सोमानन्द जी ने बताया कि मन का ही सारा खेल है। मन ही बंधन है और मन ही मोक्ष का कारण है। दो प्रकार की वृत्तियों में हम जीते हैं। एक सांसारिक वृत्ति जिसमें अधिकांश लोग जीते हैं। जो संसार की ओर ले जाती है। ऐश्वर्य की ओर ले जाती है। कोई डॉक्टर, मास्टर, वकील बनते हैं। सुख को प्राप्त करते हैं। दूसरी वृत्ति जो संसार के सुखों को छोड़कर मुक्ति की ओर बढती है या तो किसी अपने ने धोखा दिया हो या कोई बड़ा रोग आ गया हो या कोई प्रिय छोड़ कर जा चुका है या पूर्व जन्म के संस्कार आदि के कारण मन में वैराग्य के भाव आते हैं और परमात्मा की ओर बढ़ता है। संसार के भोग भोगने से उसमें कुछ खालीपन सा लगता है पूर्णता नहीं आती। पूर्ण संतुष्टि नहीं होती। जब व्यक्ति आत्मा परमात्मा को जान लेता है तब पूर्ण संतुष्टि होती है।

वानप्रस्थ साधक आश्रम रोजड़ से पधारे स्वामी सत्येन्द्र परिव्राजक जी ने बताया कि हमें प्रात:काल उठकर सर्वप्रथम ईश्वर के साथ अपना संबंध बनाना है। जो हम प्रात: काल मन्त्र बोल रहे हैं उनके साथ अपने मन को जोड़ कर रखना है। प्रथम मन्त्र में ही ईश्वर के ९ नामों की चर्चा है। हम उन नामों को अपने मन में विचार करें कि अग्नि ज्ञान स्वरूप ईश्वर है, अग्नि जैसे रास्ता दिखाती है वैसे ही ईश्वर भी हमें रास्ता दिखाता है। अग्नि जैसे अंधकार को दूर करती है, प्रकाश देती है। ऐसे ही ईश्वर भी हमें हमारे अंदर अज्ञान, अविद्या को दूर कर ज्ञान, प्रकाश देता है। समस्त दु:खों की दवा केवल ईश्वर के पास ही है। संसार के सब दु:खों से केवल हमें ईश्वर ही बचा सकता है। इसलिए हम ईश्वर का चिंतन प्रात: काल उठते ही करें, उस समय वातावरण भी अनुकूल होता है। दिन में इतनी अनुकूलता नहीं होती।

भजन के क्रम में ब्र. भानुप्रताप, पं. भूपेन्द्र जी व पं. लेखराज जी तथा श्री हेमंत जी ने सुमधुर भजन गाए।

अतिथि होता के क्रम में अजमेर निवासी डॉ. बद्रीप्रसाद जी पंचोली की दौहित्री तूलिका जी का जन्मदिवस सायंकाल सपरिवार यज्ञ करके मनाया गया। दूसरा श्रीमती सरला मेहता जी की पुत्री सुश्री शिवांगी मेहता का जन्मदिन जन्मदिवस की आहुति देकर मनाया गया। आचार्य विद्यानन्द जी आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

अजमेर निवासी श्री केशवानन्द जी व श्रीमती भगवती आनन्द जी का ५८वाँ विवाह वर्षगांठ व उन्हीं के पुत्र श्री नयन जी व पुत्रवधू श्रीमती नैना जी का भी जन्मदिवस तथा उन्हीं की पौत्री सुश्री श्रद्धा जी का नामकरण संस्कार सायंकाल यज्ञ करके व विवाह वर्षगांठ, जन्मदिवस, नामकरण के मन्त्रों से किया गया। आचार्य विद्यानन्द जी आदि ने आशीर्वचन कहे। अपने सभी आश्रमवासियों के लिए सांयकाल का भोजन भी करवाया।

सभा कोषाध्यक्ष श्री सुभाष जी नवाल के छोटे भाई श्री दिनेश जी नवाज ने अपना वैवाहिक वर्षगांठ प्रात: यज्ञ करके विवाह वर्षगांठ की आहुति देकर मनाया। श्री देवमुनिजी आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

अजमेर निवासी श्री हेमन्त जी ने भी प्रात: काल यज्ञ करके जन्मदिवस की आहुति देकर सपरिवार इष्ट मित्रों सहित अपना जन्म दिवस ऋषि उद्यान में मनाया। आचार्य कर्मवीर जी आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

अजमेर निवासी श्री हेमन्त जी के विद्यार्थी श्री विक्रम जांगिड़ टेनिस कोच बिट्स पिलानी एवं योग थैरेपिस्ट श्रीमती दीप्ति जी के सुपुत्र शिवांश जी का जन्म दिवस प्रात:काल यज्ञ करके जन्मदिवस की आहुति देखकर मनाया गया। पंडित भूपेन्द्र जी आदि के द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया गया।

स्वामी श्रेयस्पति परिव्राजक पूर्व नाम आचार्य नवानन्द जी वानप्रस्थ साधक आश्रम रोजड़ की ४ जून संन्यास दीक्षा में अपने आठ ब्रह्मचारी के साथ आचार्य कर्मवीर जी उपस्थित रहे। **- आचार्य ज्ञानचन्द**

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्य पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु
खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। **आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।**

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। राशि जमा करने के पश्चात् दूरभाष द्वारा कार्यालय को अवश्य सूचित करें। दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

आचार्य सोमदेव आर्य

आचार्य कर्मवीर आर्य

आचार्य शक्तिनन्दन वैदिक

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

योग साधना एवं स्वाध्याय शिविर

आचार्यों एवं शिविरार्थियों का सामूहिक चित्र

११-१८ जून २०२३

आर जे/ए जे/80/2021-2023 तक प्रेषण : ३० जून २०२३ आर.एन.आई. ३९५९/५९

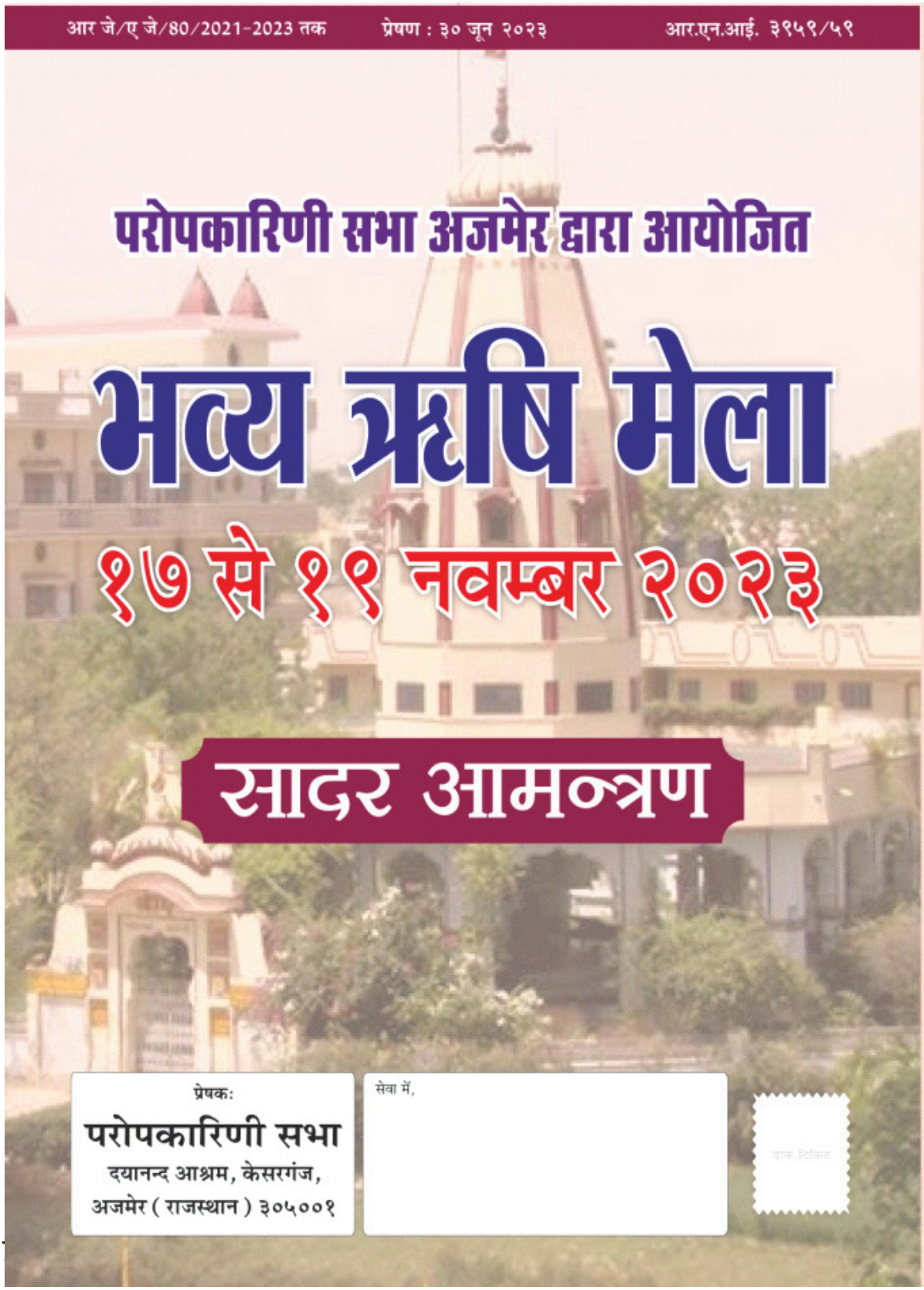

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

भव्य ऋषि मेला

१७ से १९ नवम्बर २०२३

सादर आमन्त्रण

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट